ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 03 अगस्त 2025 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार, 03 अगस्त 2025 से 09 अगस्त 2025

श्रावण शु. 09 ● वि० सं०-2081 ● वर्ष 66, अंक 31, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 201 ● सृष्टि-संवत् 1,97,29,49,125 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रु. ● वार्षिक शु. 300/- रु.

डी.ए.वी. पनवेल मुम्बई में अलंकरण समारोह

डी.ए.वी पब्लिक स्कूल न्यू पनवेल में एक अलंकरण समारोह का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि माननीय श्री अनिल कुमार राव (डी.ए.वी सीएमसी नई दिल्ली के उपाध्यक्ष और डी. ए. वी पब्लिक स्कूल न्यू पनवेल के अध्यक्ष) उपस्थित रहे।

मुख्य अतिथि ने स्कूल द्वारा आयोजित लंगर का वितरण कर 'पंगत में संगत' के विस्तार को प्रचारित करने की पहल की। श्री राव ने कहा–"इस प्रकार की गतिविधियों से छात्रों में प्रेम–भाव, भाई चारे और दानशीलता की भावना को बढ़ावा मिलता है। इस खास

दिन पर श्री अनिल राव जी द्वारा "साद फाउंडेशन, मानव शेल्टर होम, नवीन पनवेल" को एकत्रित अनाज सम्मान के साथ दिया।"

अतिथियों ने छात्रों को अपनी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों का पालन करने के लिए प्रेरित किया।

प्राचार्य सुमन्त घोष ने बताया कि स्कूल में अन्नपूर्णा समिति का भी गठन किया गया है। श्रीमती सिम्मी जुनेजा (प्रधानाचार्या) श्रीमती सीमा मेंदीरत्ता, (प्रधानाचार्या) उपस्थित रहे।

डी.ए.वी. सेक्टर-14, गुरुग्राम में वृक्षारोपण अभियान

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, सेक्टर–14, गुरुग्राम में पर्यावरण जागरूकता अभियान के तहत वृक्षारोपण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस अभियान का उद्देश्य छात्रों में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता और पर्यावरण अनुकूल आदतों का विकास करना रहा।

हुए वातावरण को शुद्ध रखने का संदेश भी दिया।

विद्यालय की प्रधानाचार्या ने भी पौधारोपण कर विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया। उन्होंने कहा कि ***"प्रकृति से जुड़ाव और उसकी देखभाल करना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।"*** इस प्रकार से विद्यार्थियों को

कक्षा चौथी से बारहवीं तक के सभी छात्रों को पौधे वितरित किए गए। बच्चों ने उत्साहपूर्वक पौधे ग्रहण किए और उन्हें रोपित कर उनकी देखभाल का संकल्प लिया। इस अवसर पर उन्होंने पेड़ों के पर्यावरणीय महत्व को समझते पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक रहने का संदेश दिया गया।

विद्यालय द्वारा किया गया यह वृक्षारोपण अभियान निश्चित ही भावी पीढ़ी को स्वच्छ, हरित एवं सतत भविष्य की ओर अग्रसर करेगा।

डी.ए.वी. बिश्रामपुर (छ.ग.) में चतुर्वेद-शतक पारायण यज्ञ

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल बिश्रामपुर में तीन दिवसीय चतुर्वेद शतकम् पारायण, यज्ञ का आयोजन किया गया।

प्रथम दिवस ऋग्वेद के मंत्रों से छात्र–छात्राओं द्वारा भजन गायन प्रस्तुत किया गया।

प्राचार्य श्री एच. के. पाठक ने विद्यालय परिवार के स्वस्थ एवं सुखी जीवन की मंगल कामना करते हुए

आहुतियाँ दी गई। द्वितीय दिवस यजुर्वेद के मंत्रों से आहुतियाँ दी गईं। तृतीय दिवस सामवेद एवं अथर्ववेद के मंत्रों से आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति प्रदान कीं।

विद्यालय के समस्त शिक्षक–शिक्षिकाएँ, कर्मचारी एवं विद्यार्थी गण पूरे मनोयोग एवं श्रद्धाभाव से सम्मिलित हुए।

विद्यालय के संस्कृताचार्यों द्वारा वैदिक मंत्रोच्चारण कर यज्ञ को विधिवत् पूर्ण कराया गया। श्री नासिर खान एवं श्री मनीष शर्मा के निर्देशन में वैदिक यज्ञ के प्राचीन परंपरा पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यज्ञों से न केवल पर्यावरण शुद्ध होता है बल्कि तन–मन भी पवित्र होता है।

विद्यालय प्रबंधन समिति के अध्यक्ष एवं एस. ई. सी. एल. बिश्रामपुर क्षेत्र के महाप्रबंधक डॉ संजय सिंह ने विद्यालय परिवार के लिए सर्वे भवन्तु सुखिनः की कामना की।

सामूहिक शान्ति पाठ व प्रसाद वितरण के साथ यज्ञ का सफल समापन हुआ।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक – पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 03 अगस्त 2025 से 09 अगस्त 2025

बड़े-छोटे सबको नमः

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान् यदि शक्नवाम, मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः।।

ऋग् 1.27.13

ऋषिः **आजीगर्तिः शुनः शेषः।** देवता **विश्वेदेवाः।** छन्दः **त्रिष्टुप्।**

● (**महद् भ्यः नमः**) [ज्ञान और गुणों में] महानों को नमः (**अर्भकेभ्यः नमः**) छोटों को नमः, (**युवभ्यः नमः**) युवकों को नमः, (**आशिनेभ्यः नमः**) वयोवृद्धों को नमः। (**यदि शक्नवाम**) जहाँ तक [हम] समर्थ हों (**देवान्**) विद्वानों को (**यजाम**) सत्कृत करें। (**देवाः**) हे विद्वानों! (**ज्यायसः**) अपने से बड़े के (**शंसं**) स्तवन को [मैं] (**मा आवृक्षि**) न छोड़ूँ।

●मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे अन्यों के प्रति अभिवादन आदि उचित शिष्टाचार का पालन करना होता है। मैं भी बड़े छोटे सबको अभिवादन करता हूँ; कृत्रिम और दिखावटी नहीं, किन्तु अन्तर्मन से 'नमः' करता हूँ। 'नमः' का मूल अर्थ है झुकना। झुकना सिर से भी होता है, मन से भी। राजा, राज्याधिकारी, माता, पिता, गुरु, अतिथि, साधु, संन्यासी, शिशु, कुमार, विद्यार्थी, युवक, वृद्ध, स्वामी, सेवक प्रत्येक से मिलने पर हृदय में जो आदर, श्रद्धा, प्रेम, आशीर्वाद आदि के भाव उत्पन्न होते हैं, वे सब 'नमः' के अन्दर समाविष्ट हैं। अतः अभिवादन के लिए वैदिक 'नमस्ते' शब्द अत्यन्त हृदय-ग्राही और उपयुक्त है। जब छोटे बड़े को 'नमस्ते' कहने में पारस्परिक सौहार्द और एक-दूसरे की उन्नति की कामना व्यक्त होती है। साथ ही 'नमः' में केवल शुभकामना ही नहीं, प्रत्युत बड़े-छोटे सबके प्रति कर्तव्य-पालन का भाव भी निहित है।

हे राष्ट्र के विद्यावृद्ध और गुणवृद्ध महान् नर-नारियों! हे उपदेशामृत-वर्षा से जनता को तृप्त करनेवाले वीतराग संन्यासियो! हे विद्वच्छिरोमणि तपोनिष्ठ वानप्रस्थ आचार्यो! हे देश के लिए प्राणों का उत्सर्ग करने को उद्यत महावीरों! हे जनता-जनार्दन की सेवा में तत्पर महापुरूषों! 'तुम्हें नमः'। हे निश्छल भावभंगियों और बाल-क्रीड़ाओं से मन को मुदित करने वाले अबोध शिशुओं! हे अल्पवयस्क कुमारो! हे गुरु के अधीन विद्याध्ययन में रत तपस्वी, व्रती ब्रह्मचारियों! तुम्हें 'नमः'। हे अपने संकल्प-बल से भूमि आकाश को झुका देनेवाले बली, साहसी, ओजस्वी, विजयी युवको! तुम्हें 'नमः'। हे परिपक्व, धीर, गम्भीर, अनुभवी, धन्य, वन्दनीय, वयोवृद्ध जनो! तुम्हें 'नमः'।

समस्त बालक, युवक, वृद्ध मेरे अर्चनीय देव हैं। जहाँ तक सम्भव होगा, मैं इन्हें स्नेह-सत्कार दूँगा, इनकी सेवा करूँगा। यह भी ध्यान रखूँगा। यह भी ध्यान रखूँगा कि जो मुझसे बड़े हैं, उनकी शंसना में, उनके उपकार के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन में मुझसे कोई त्रुटि न हो।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्वज्ञान

● महात्मा आनन्द स्वामी

साधना रूपा भक्ति और प्रेमलक्षणा भक्ति की चर्चा करने के बाद स्वामी जी ने एक अन्य प्रकार की भक्ति की चर्चा आरम्भ की।

भक्ति की इस स्थिति में भक्त हर एक मनुष्य को मानव शरीर नहीं समझता अपितु प्रभु-दर्शन का मन्दिर समझता है। इसके प्रति श्रद्धा, प्रेम और भक्ति की भावना करता है और इसमें कोई त्रुटि हो तो उसे दूर करना अपका कर्त्तव्य समझता है। अब वह प्राणि मात्र के लिए चिन्तित रहता है, अपनी मुक्ति के लिए नहीं। अब उसे न राज्य चाहिए, न स्वर्ग न मुक्ति।

यह भक्ति की पराकाष्ठा है। भारत का इतिहास ऐसे भक्तों से भरा पड़ा है। स्वामी जी ने ऐसे अनेक भक्तों की सूची प्रस्तुत की। स्वामी दयानन्द का उदाहरण देकर स्थापित किया कि तप और प्रभु-भक्ति से पूर्ण होकर ऐसा भक्त दुःखी, पीड़ित जनता को सन्मार्ग दिखाने की ओर प्रवृत्त होता है चाहे उसे गालियाँ, अपमान ही सहन क्यूँ न करना पड़े।

स्वामी जी ने कहा अपने-आपको पहचाने बिना और प्रभु-दर्शन किए बिना लोक सेवा, देश सेवा और परोपकार में प्रवृत्त हाने वाले तो स्वयं ही दुःखी रहते है। बुझे हुए दीपक के समान वे किसी और को क्या प्रकाश देंगें। इसलिए स्वामी दयानन्द ने सामाजिक उन्नति से पहले आत्मोन्नति की बात कही।

जिस आत्मोन्नति अथवा आत्म दर्शन की बात हो रही है वह भी प्रभुकृपा बिना प्राप्त नहीं हो सकती।

स्वामी जी ने संकेत किया कि भक्ति के और भी रूप हैं लेकिन एक प्रकार की भक्ति का संकेत आवश्यक है। ऐसी भक्ति करने वाला तो अपनी और संसारी जीवों की बागडोर ही प्रभु के अर्पण कर देता है। **'प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो'**। यह भावना प्रभु कृपा प्राप्त करने का अमोघ साधन है।

..... **अब आगे**

प्रभु कृपा आवश्यक है

निष्कर्ष यह है कि प्रभु कृपा को प्राप्त करने के लिए अपने-आपको परमात्मा के अर्पण कर देना आवश्यक है क्योंकि प्रभु कृपा के बिना मनुष्य तत्त्वज्ञान प्राप्त कर ही नहीं सकता। महर्षि दयानन्द ने लिखा है-**"जगदीश्वर अपनी कृपा से ही अपने आत्मा का विज्ञान देनेवाला है।"** महर्षि दयानन्द ने तो यह लिखा है कि जब तक परमेश्वर का अनुग्रह और आत्मा की शुद्धि नहीं होती, तब तक वेदों के अर्थ का भी यथावत् प्रकाश मनुष्य के हृदय में नहीं होता। महर्षि ने यह भी उल्लेख किया है कि भक्त या साधक जब परमात्मा का ध्यान करता है तो प्रभु अपनी कृपा से उसकी बुद्धि को अपने में युक्त कर लेता है तथा वही परमात्मा अपनी कृपा से उन भक्तों के आत्मा में 'बृहज्ज्योति' (बड़े प्रकाश) को प्रकट करता है।

भक्त का यत्न यही होना चाहिए कि मैं प्रभु-कृपा का पात्र बन जाऊँ। प्रभु-कृपा का आशीर्वाद ही सब क्षेत्रों में विजय प्राप्त कराएगा। प्रभु-कृपा के बिना तो सारी विद्या, सारे पुरुषार्थ, सारे प्रयत्न निष्फल ही समझने चाहिएँ।

लाज तिहारे हाथ

पर सर्वसाधारण तथा गृहस्थी इस सीमा तक कैसे पहुँच सकते हैं ? वे तो जीवन-यात्रा की एक-एक आवश्यकता को पूर्ण कराने के लिए अपने भगवान् ही को पुकारते हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द ने **'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका'** में लिखा है :

सबसे उत्तम मोक्ष-सुख से लेके अन्न-जल-पर्यन्त सब पदार्थों की याचना मनुष्यों को केवल ईश्वर ही से करनी चाहिए।

{ईश्वरस्तुतिप्रार्थनायाचनासमर्पणविषयः।}

वेद में स्वयं भगवान् ने यह आज्ञा दी है-"जैसे पिता को सन्तान पुकारते हैं, वैसे ही मुझे पुकारो। मैं ही सारे जगत् का पिता हूँ। मैं ही सन्तान जगत् का कारण और सब धनों का विजय करानेवाला हूँ और मैं ही दाता हूँ। **{ऋग्वेद मं. 10. सू. 48. मन्त्र 1}**

तब तुझ ही से भगवन् ! जीवन–यात्रा की सामग्री, अच्छा उत्तम राज्य, कल्याणकारी धन, स्वास्थ्य–प्रद अन्न तथा ऐश्वर्य के अतिरिक्त वह शान्ति माँगते हैं जो संसार में आप ही से प्राप्त हो सकती है। करुणा के सागर ! हम तुच्छ जीव हैं, अल्पज्ञ हैं, बुद्धि भी निर्बल है और यात्रा बड़ी कठिन है। आपकी सहाय और कृपा के बिना न तो संसारी कार्यों में सफलता मिल सकती है और न ही तेरे दर्शन की सामर्थ्य प्राप्त हो सकती है। हे दया के भण्डार! हे दाता ! हमें दे वह ज्योति, वह प्रज्ञा, वह शक्ति, जिसे पाकर हम तेरी आज्ञा का पालन कर सकें और तेरे समीप आ सकें। हे सूर्य के सदृश प्रकाशवान् प्रभो ! कितना भयंकर अन्धकार विषयों, प्रलोभनों, रोगों तथा चिन्ताओं की घनघोर घटाओं के कारण हमारे मार्ग में छा गया है ! कृपा–सागर ! थोड़ा–सा प्रकाश डालकर इन सबको छिन्न–भिन्न कर दीजिए। आप तो सर्व–शक्तियों और प्रकाशों के स्वामी हैं। महाराज ! ऐसी दया का हाथ सिर पर रखो कि ये सारे अन्धकार हमें सत्पथ से भटका न दें। हम तेरे ही दर की ओर बढ़ते चले जाएँ और प्यारे ! आपके बिना यह कृपा और करेगा भी कौन ?

दर पर तेरे आन खड़े हैं,
बने सवाली नाथ !
अपना और न कोई सहारा,
लाज तिहारे हाथ।।

ओ दाता ! तेरे–जैसे दयालु दाता से भिक्षा न मिली तो फिर हम तो तेरे दर पर पड़े भूखे ही मर जाएँगे। और तो कोई तेरे जैसा दाता है नहीं। किसके दर पर जाएँ ? तू ही अपनी कृपा–दृष्टि से हमें तृप्त कर ! चाहते हैं तेरी करुणा, तेरी कृपा, तेरी दया। बस, इतनी–सी भीख मिल जाए तो फिर तेरा प्रेम हमें मिला ही है। तेरे एक कृपा– कटाक्ष से मिल जाता है उत्साह, साहस, धैर्य और कष्टों–क्लेशों की भड़कती ज्वालाओं में भी शान्त रहने का सामर्थ्य। प्रभो ! तब सांसारिक चिन्ताएँ सता न सकेंगी। तब तेरा भक्त जान जाता है किः

है तुझे बटोही चिन्ता किसकी,
क्यों है भरमाया ?
जो मुर्झाया वह फूला,
जो फूला वह मुर्झाया।।

प्यारे ! फिर तेरे दर्शन भी सुलभ हो जाते हैं। तेरी कृपा–दृष्टि होते ही तेरा सुन्दर रूप संसार की हर वस्तु में चमकने लगता है। **'तू ही तू....तू ही तू'** की ध्वनि हर ओर सुनाई देने लगती है। ठीक ही तो है।

आँखों में तू है जिसके,
दिल में खयाल तेरा।
मुश्किल नहीं है उसको,
होना विसाल[1] तेरा।।
दिल का मेरे शिवाला,
सब मन्दिरों से आला[2] ।
देखा करूँ मैं इसमें,
हरदम जमाल[3] तेरा।।
लीला तेरी न जानी,
नारद–से देवता ने।
'आनन्द' चीज़ क्या है,
जाने जो हाल तेरा।।

1. मिलाप 2. उत्तम 3. सुन्दर रूप

जब अपनी अल्पज्ञता और प्रभु की सर्वज्ञता समझ ली, तब भगवान् अपने शरणागत की टेर सुनता है। साधक भी भक्त अमीचन्द जी के शब्दों में मस्त होकर गाता है :

जो हरि गीत प्रीति सँग गाए,
तिसके शोक निकट नहीं आए।
अमृतवत् तेरो चरित मनोहर,
मन की तपन बुझाए।।
उधरे पतित अधम अति पापी,
जो तव शरण में आए।
हे प्रभु, हम अति दुखिया होकर,
तव शरणागत आए।।
परम सुख–दाता ज्ञान–प्रदाता,
तैं वह नाम धराए।
माँग रहे द्वारे पर याचक,
अब क्यों देर लगाए ?
विषयन से उपराम रहूँ सदा,
भक्ति हृदय में भाए।
पढ़ सुन वेद वेदाङ्ग अमीचन्द,
संशय भरम मिटाए।।

सचमुच तब सारे भ्रम मिट जाते हैं, हृदय में प्रभु प्रेम उमड़ पड़ता है और प्रभु की कृपा–दृष्टि पड़ते ही साधक कृत–कृत्य हो जाता है। भक्त जब किसी दुखिया को चिन्ता से ग्रस्त देखता है तो उसे सन्मार्ग दिखलाने के लिए श्री रणवीर जी के शब्दों में पुकार उठता है :

1. **भरोसा कर तू ईश्वर पर,**
तुझे धोखा नहीं होगा।
ये जीवन बीत जाएगा,
तुझे रोना नहीं होगा।।
2. **कहीं सुख है कहीं दुख है,**
ये जीवन धूप–छाया है।
हँसी में ही बिता डालो,
बितानी ही ये माया है।।
3. **जो सुख आए तो हँस देना,**
जो दुख आए तो सह लेना।
न कहना कुछ कभी जग से,
प्रभु ही से तू कह लेना।।
4. **ये कुछ भी तो नहीं जग में,**
तेरे बस कर्म की माया।
तू खुद ही धूप में बैठा,
लखे निज–रूप की छाया।।
5. **कहाँ ये था ? कहाँ तू था ?**
कभी तो सोच ओ बन्दे!
झुकाकर सीस को कह दे,
प्रभो वन्दे ! प्रभो वन्दे!!

भक्त के चिह्न

परमात्मा के अनन्य भक्तों में फिर कुछ विशेषताएँ आ जाती हैं और देखा जाता है कि उनकी जीवन–यात्रा का ढंग कुछ विलक्षण हो गया है।

प्रभुभक्त – निर्लोभी होता है।
प्रभुभक्त – निर्भय होता है।
प्रभुभक्त – निरभिमानी होता है।
प्रभुभक्त – निरहङ्कारी होता है।
प्रभुभक्त – निर्मोही होता है।
प्रभुभक्त – अदम्भी होता है।
प्रभुभक्त – अक्रोधी होता है।
प्रभुभक्त – अकामी होता है।
प्रभुभक्त – परम–प्रेमी होता है।
प्रभुभक्त – हर हाल में खुशहाल होता है।
प्रभुभक्त – सदा परोपकार में लगा रहता है।
प्रभुभक्त – दया से भरपूर रहता है।

इसी प्रकार प्रभु–भक्त शान्त रहता है; भोग की चोट पड़ने पर घबराता नहीं; मन, वाणी और कर्म से किसी का अहित नहीं करता, समस्त जगत् को प्रभु का खेल समझकर उसी की महिमा देखता है और संसारी धन्धों ही में फँसे लोगों को सचेत करता हुआ कहता हैः

बहुत गई थोड़ी है बाकी,
अब तो अलख जगा बाबा !
थोड़े दिन का खेल–तमाशा,
क्यों आसक्त बना बाबा ?

जितने प्रकार की भक्ति का वर्णन यहाँ किया गया है, उनका तात्पर्य यही है कि प्रभु–कृपा प्राप्त हो सके। इनकी साधना करनेवाले साधक (भक्त) धन्य हैं :

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था,
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवितसुखसागरेऽस्मिन्,
लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।।

'जिसका चित्त अपार विज्ञानानन्द–घन समुद्ररूप परब्रह्म परमात्मा में लीन हो गया है, उससे कुल पवित्र, माता कृतार्थ और पृथिवी पुण्यवती हो जाती है।'

क्रमशः

नाशपाती

नाशपाती खाने से पाचन स्वास्थ्य, हृदय स्वास्थ्य, और त्वचा में सुधार जैसे कई लाभ मिलते हैं। इसमें फाइबर, विटामिन और एंटीऑक्सीडेंट भरपूर मात्रा में होते हैं, जो शरीर के लिए बहुत फायदेमंद होते हैं।

नाशपाती खाने के फायदेः

पाचन स्वास्थ्य में सुधारः

नाशपाती में फाइबर की मात्रा अधिक होती है, जो पाचन क्रिया को बेहतर बनाने और कब्ज से राहत दिलाने में मदद करती है.

हृदय स्वास्थ्य के लिए फायदेमंदः

नाशपाती में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट और पोटेशियम हृदय स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में मदद करते हैं। ये कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने और रक्तचाप को नियंत्रित करने में भी सहायक होते हैं.

त्वचा के लिए फायदेमंदः

नाशपाती में विटामिन सी और एंटीऑक्सीडेंट पाए जाते हैं, जो त्वचा को स्वस्थ और चमकदार बनाने में मदद करते हैं.

वजन घटाने में सहायकः

नाशपाती में कैलोरी की मात्रा कम होती है और फाइबर अधिक होता है, जो वजन घटाने में मदद करता है.

इम्युनिटी बढ़ाता हैः

नाशपाती में विटामिन सी और अन्य एंटीऑक्सीडेंट पाए जाते हैं, जो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करते हैं.

डायबिटीज के लिए फायदेमंदः

नाशपाती ब्लड शुगर लेवल को नियंत्रित करने में मदद करती है, जिससे यह डायबिटीज के मरीजों के लिए फायदेमंद होती है.

आंखों के लिए फायदेमंदः

नाशपाती में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट आंखों को स्वस्थ रखने और उम्र से संबंधित बीमारियों से बचाने में मदद करते हैं.

निष्कर्षः

नाशपाती एक पौष्टिक फल है जो विभिन्न स्वास्थ्य लाभ प्रदान करता है। इसका नियमित सेवन शरीर को स्वस्थ और बीमारियों से बचाने में मदद करता है।

आर्यसमाज की उन्नति में बाधाएँ

● पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

संसार को तीनों गुणों के व्यक्ति चाहिएँ–

कोई संस्था बिना गुण और गुणज्ञ संचालकों के नहीं चल सकती। संचालकों को हम वर्गत्रयी की प्रथा के अनुसार तीन विभागों में विभक्त कर सकते हैं–सतो गुणी, रजो गुणी और तमोगुणी। यह गुणत्रयी बिना कारण अथवा बिना लाभ के नहीं है। प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार गुणों का उपार्जन करता है परन्तु संसार को प्रत्येक गुण की आवश्यकता है। यदि केवल सतोगुण पुरुषों से ही संसार भर जाए तो एक दिन काम न चले। यदि केवल रजोगुणी या तमोगुणी ही शेष रह जाएँ तो भी सृष्टि की बड़ी हानि हो इसलिए सृष्टि का क्रम ऐसा रखा गया है कि तीनों प्रकार के लोगों की विद्यमानता सम्भव भी हो और आवश्यक भी।

सतोगुणी संचालक–

सतो गुणों के संचालक वे हैं जो पूर्ण निःस्वार्थ भाव से संस्था की प्रगति के विषय में सोचा करते हैं। उनको उस संस्था से न तो खाना है, न उस पर आधिपत्य प्राप्त करना है। न उसके द्वारा अपनी ख्याति बढ़ाना है और न उस संस्था की ओर उदासीनता करनी है। वस्तुतः ऐसे ही पुरुष संस्थाओं की उन्नति के विषय में सोच सकते हैं। उनमें ऊपर के निषेधात्मक गुणों के अतिरिक्त एक रचनात्मक गुण भी होना चाहिए वह है शुद्ध निर्मल मस्तिष्क जो परिस्थिति को ठीक–ठीक समझ सके और गुणज्ञता की शक्ति रुचि तथा आवश्यकताओं को समझ कर उन में संयोजन–सिद्धि के लिए प्रेरणा उत्पन्न कर सके।

साहित्य में भी काला बाजार–

दूसरे वर्ग को हम रजोगुणी कह सकते हैं। इन में जोश अधिक होता है। दूरदर्शिता कम होती है। दौड़–धूप बहुत करते हैं और एक वस्तु के बाह्यरूप को सुन्दर बनाना और सुन्दर देखना चाहते हैं परन्तु हर एक बात में वे अपनी इच्छा की पूर्ति देखते हैं। कार्य की सिद्धि उनकी विशेष पहचान और विशेष गुण है। या तो वे भाव के भूखे हैं या मान के या वोट और आधिपत्य के। इनमें से बहुत निर्धन होते हैं जो धन की लोलुप्ता में अनेक प्रकार की बनावटें किया करते हैं। काला बाज़ार से इन्हीं की वृद्धि होती है। आप यह न समझिए कि काले बाज़ार में समाज की कोई प्रयोजना सिद्ध नहीं होती। यदि ऐसा होता तो काला बाज़ार एक भी दिन न चल पाता। बहुत से लाभ समाज को काले बाज़ार वालों के द्वारा ही हो रहे हैं। दूसरे आप यह न समझिए कि काला बाज़ार केवल सब्जी मण्डी, गुड़मण्डी या अनाज की मण्डी की चीज है। अच्छे व्याकरण, शास्त्र या साहित्य के प्रेमी भी काले बाज़ार को चलाते हैं और चला रहे हैं क्योंकि वे अपने साहित्य या दार्शनिकता को इस प्रकार प्रयोग में लाते हैं कि उससे वे अपनी स्वार्थ सिद्धि कर सकें। इन्हीं के विषय में भर्तृहरि ने कहा था–

पुरा विद्वत्ताऽऽसीदुपशमवतां क्लेशहतये।
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्ध्यै विषयिनम्।

जो पण्डित जनता को धोखा देकर या चिकनी चुपड़ी बातें बनाकर धन का मान लेना चाहता है या जो साहित्यकार किसी पुस्तक में प्रक्षेप कर अपना प्रयोजन सिद्ध करना चाहता है {**दूसरों की पुस्तक से सामग्री चुराना भी तो साहित्यिक काला बाज़ारी है। 'जिज्ञासु'**} या जो नीतिज्ञ जनता को धोखा देकर वोट लेना चाहता है, वह कुछ कम काला बाजार नहीं है। भेद केवल इतना है कि यह उच्च श्रेणी का काला बाज़ार उतनी जल्दी पकड़ में नहीं आ सकता जितना गाजर मूली बेचने वाला, परन्तु हानि तो इसी उच्चवर्ग से बहुत है। इस प्रकार के संचालकों को मैं रजोगुणी कहता हूँ।

तीसरे सञ्चालक तमोगुणी हैं। महाआलसी, महाअज्ञानी न कुछ समझते हैं, न कर सकते हैं। उनको आगे चलाने के लिए रजोगुणी लोगों का डण्डा चाहिए। ऐसे लोग सतोगुणियों की ओर तो ध्यान ही नहीं देते परन्तु रजोगुणियों के डण्डे से भयभीत होते हैं।

संन्यासी भी सतोगुणी नहीं रहे–

अब देखना चाहिए कि आर्यसमाज में भी इस विषय में क्या स्थिति है। मैंने जहाँ तक विचार किया है आर्यसमाज में सतोगुणियों का सर्वथा अभाव है। शायद कोई ही सतोगुणी मिलेगा और यदि कोई है तो जनता की जानकारी से परे है। कम से कम मैं तो नहीं जानता। संन्यासियों में भी इस कोटि के मनुष्य नहीं मिलते। कहने को तो संस्कार के समय दोनों ऐषणाओं को {**यहाँ पुत्रैषणा की ओर ही संकेत नहीं शेष दो की चर्चा है। 'जिज्ञासु'**} यज्ञ की भट्टी में झोंक कर ही मनुष्य संन्यासी बनता है परन्तु वे ऐषणाएँ रूपान्तर में पुनः जन्म लेकर पीले वस्त्रों पर भी आक्रमण कर ही बैठती हैं। यदि किसी संन्यासी ने किसी सीमा तक वीतरागत्व प्राप्त भी किया तो उसकी दृष्टि इतनी न्यून होती है कि वह कल की बात भी नहीं सोच सकता। उसका हृदय स्वच्छ भी हो परन्तु बुद्धि गंदली होती है। आर्यसमाज में ऐसे नादान दोस्तों की भी कमी नहीं इसीलिए मैं उनको सतोगुणियों में नहीं गिनता। बीच में तमोगुणियों की भी बात कर दूँ। आर्यसमाज में सौभाग्यवश तमोगुणियों का भी आधिक्य नहीं है। प्रगतिशील समाज में तमोगुणी रहने ही नहीं पाता। अभी दो दिन की बात है एक उपदेशक ने मुझ से कहा था कि आर्यसमाजी बदमाश हो सकता है परन्तु मूर्ख नहीं हो सकता। यह बात किसी अंश में ठीक थी क्योंकि मैं देखता हूँ कि हर आर्यसमाजी कुछ न कुछ करना चाहता है, कुछ न कुछ कहना चाहता है और कुछ न कुछ सोचना चाहता है। निश्चल को यह मृत्यु के समान समझता है।

दलबन्दी का कारण–

इसलिए आर्यसमाज में रजोगुणियों की भरमार है। श्री स्वामी सर्वदानन्द जी को मैंने कई बार उपदेश में कहते सुना था कि संस्थाओं का चलाना या समाजों में पदाधिकार लेना यह सब रजोगुण के अन्तर्गत आता है। इस रजोगुण का भी उपयोग है। इसी रजोगुण के फलस्वरूप आर्यसमाज में प्रगति दिखाई पड़ती है। बड़ी–बड़ी संस्थाएँ, विशाल भवन इसी रजोगुण की कृतियाँ हैं, परन्तु सब से बड़ी बाधा यह है कि इस रजोगुण को नियमित सीमा तक रखने के लिए सतोगुण की भावना का सर्वथा अभाव है इसलिए, संस्थाओं में अनावश्यक स्पर्धा, अनावश्यक दलबन्दी और कालाबाज़ारी है। जिसके मन के विपरीत कोई बात हुई वही नई संस्था खोल देता है और जनता उसके पीछे लग पड़ती है। इससे आर्यसमाज की प्रगतिशीलता में तो भेद नहीं आता परन्तु यह प्रगति कोल्हू के बैल के समान उन्नतिशील नहीं होती। प्रगति के साथ–साथ उन्नति भी तो चाहिए। अलात चक्र चमकीला होते हुए भी तो ऊर्ध्वगामी नहीं होता। आप आर्यसमाज में जितने नेता देखेंगे उनमें अधिकतर किसी न किसी संस्था के संचालक होंगे। और उनकी संस्था उनके लिए साधन नहीं अपितु साध्य होगी। वह उसको चलाने और दूसरी संस्थाओं के मिटाने के लिए अपनी आँख का शहतीर न देखकर दूसरे की आँख के तिनके को खुर्दबीन से देखेंगे और अपनी खुर्दबीन को निःशुल्क दूसरे को देते फिरेंगे और यतः सभी के पास ऐसी खुर्दबीनें हैं अतः जनता की श्रद्धा सभी संस्थाओं से हटती जाती है और उन सब को आगे चलने में कठिनाई हो रही है। कितने गुरुकुल, कितनी पाठशालाएँ, कितने कालेज, कितने स्कूल, कितनी शुद्धि सभाएँ, कितनी दलितोद्धार सोसाइटियाँ, कितने अखिल भारतीय मण्डल। कोई किसी नाम से, कोई किसी नाम से परन्तु इनका प्रयोजन अपना–अपना। कोई एक दूसरे से मेल नहीं खाता, कोई एक सूत्र में बँधा नहीं। किसी को एक सूत्र में बँधने की इच्छा भी नहीं और स्पर्धा की मात्रा सीमा से बढ़ी हुई है। स्पर्धा की इस घुड़दौड़ में जनता के सामने प्रगति ही प्रगति दृष्टिगोचर होती है और उन्नति का चिह्न भी नहीं।

'ज्ञान गंगा सागर (दूसरा भाग) संगठन विषय' से साभार

(सम्पादक : प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु)

आर्यसमाज में रजोगुणियों की भरमार है। श्री स्वामी सर्वदानन्द जी को मैंने कई बार उपदेश में कहते सुना था कि संस्थाओं का चलाना या समाजों में पदाधिकार लेना यह सब रजोगुण के अन्तर्गत आता है। इस रजोगुण का भी उपयोग है। इसी रजोगुण के फलस्वरूप आर्यसमाज में प्रगति दिखाई पड़ती है। बड़ी-बड़ी संस्थाएँ, विशाल भवन इसी रजोगुण की कृतियाँ हैं, परन्तु सब से बड़ी बाधा यह है कि इस रजोगुण को नियमित सीमा तक रखने के लिए सतोगुण की भावना का सर्वथा अभाव है इसलिए, संस्थाओं में अनावश्यक स्पर्धा, अनावश्यक दलबन्दी और कालाबाज़ारी है। जिसके मन के विपरीत कोई बात हुई वही नई संस्था खोल देता है।

ऋषियों के प्रश्नोत्तर

● डॉ. भवानी लाल भारतीय

[तीन अंकों में समाप्य]

एक बार महर्षि पिप्पलाद के आश्रम में ब्रह्म के अन्वेषण में तत्पर, ब्रह्मनिष्ठ, तत्त्वजिज्ञासु निम्न छह पुरुष पहुँचे–भरद्वाज के पुत्र सुकेश, शिवि के पुत्र सत्यकाम, सौर्य के पुत्र गार्ग्य, अश्वल के पुत्र कौशल्य, भृगु के पुत्र वैदर्भि तथा कत्य के पुत्र कात्यायन। वे सभी समित्पाणि होकर गुरु–सेवा में उपस्थित हुए थे, यह जानते हुए कि महर्षि पिप्पलाद उनके द्वारा पूछे गए सभी प्रश्नों के उत्तर देने में समर्थ हैं।

जब ये लोग आश्रम में आचार्य पिप्पलाद के निकट पहुँचे और उन्होंने अपना अभिप्राय व्यक्त किया तो ऋषि ने उन्हें एक वर्ष तक आश्रम में ही तपस्यापूर्वक ब्रह्मचर्य का सेवन करते हुए श्रद्धापूर्वक रहने का आदेश दिया। साथ ही यह भी कह दिया कि इसके पश्चात् वे यथेच्छ प्रश्न पूछ सकेंगे और यदि उनके प्रश्नों का उत्तर देना उनके द्वारा शक्य होगा तो वे अवश्य स्पष्ट रूप से प्रश्नों की व्याख्या करेंगे।

इस प्रकार ऋषि के आश्रम में वर्ष–पर्यन्त तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धापूर्वक रहने के अनन्तर कत्य के कात्यायन (कबंधी) ने आचार्य के निकट आकर पूछा–**हे भगवन् ! कृपया यह बताएँ कि ये प्रजाएँ किससे उत्पन्न होती हैं?** महर्षि ने उत्तर में कहा–निश्चय ही प्रजापति परमात्मा जब संसार को उत्पन्न करने की इच्छा करता है तो वह स्वयं तप करता है। उसी तप से रयि (प्रकृति) और प्राण (शक्ति) के जोड़े को उत्पन्न करता है। रयि और प्राण ही उसकी विविधरूपा प्रजा को उत्पन्न करते हैं।

प्राण और रयि किन–किन पदार्थों और रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं, इसकी व्याख्या करते हुए आगे ऋषि ने कहा– आदित्य ही प्राण और चन्द्रमा ही रयि है। संसार में जो कुछ व्यक्त और अव्यक्त (स्थूल और सूक्ष्म) है, उनमें सूक्ष्म और अव्यक्त को ही रयि (प्रकृति) कहना चाहिए। वस्तुतः प्रकृति तो भूतों की सूक्ष्मावस्था का ही नाम है।

अब आदित्यरूपी प्राण का संसार के निर्माण और विकास में जो योग है, उसे स्पष्ट करते हैं–प्रथम आदित्य पूर्व दिशा में प्रवेश करता है और इस दिशा में रहनेवाले प्राणों को स्व–रश्मियों में धारण करता है। इस प्रकार वह प्राणों का आधारभूत सूर्य क्रमशः दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर और नीचे सर्वत्र – सब दिशाओं को प्रकाशित करता है और इन समस्त दिशाओं में अपनी किरणों को फैलाकर भूत पदार्थों और प्राणियों में (जड़–चेतन जगत् में) प्राणोन्मेष करता है। वह अग्निरूपी आदित्य ही वैश्वानर नाम धारण करता हुआ विभिन्न रूपों में अपनी प्राणाग्नि को व्यक्त करता उदय होता है। इस वैश्वानर सूर्य की स्तुति में निम्न मंत्र कहा गया है–

> विश्वरूप, किरणोंवाला, प्रकाशयुक्त, सबका आश्रय, एकमात्र ज्योतिरूप, प्रकाशमान, हज़ारों किरणोंवाला यह सूर्य अनेक प्रकार से वर्तमान होता हुआ, प्रजा का प्राणरूप, उदय हो रहा है।

पुनः संवत्सर को प्रजापति–रूप में वर्णित करते हुए आचार्य ने कहा– निश्चय ही संवत्सर = वर्ष ही प्रजापति है। इसके दक्षिण और उत्तर दो अयन (भाग) हैं। जो लोग सकाम कर्म (इष्ट और आपूर्त–यज्ञ एवं कूप, तड़ाग आदि का निर्माण) करते हैं वे चन्द्रलोक को प्राप्त होते हैं, परन्तु सुखरूपी चन्द्रलोक में रहकर उन्हें पुनः संसार में लौटना पड़ता है। इसे ही संसार में दक्षिणायन तथा पितृयान कहा है। प्रजा–कामी लोगों का यह मार्ग है, जो सकाम भाव से किए गए नाना लोकोपकारी कार्यों तथा यज्ञादि द्वारा सिद्ध होता है। परन्तु यह मार्ग केवल लौकिक सुखों को ही प्रदान कर सकता है। इसे ही शास्त्रों में पितृयान कहा है। फलोपभोग के उपरान्त पुनः जन्म लेना ही इस मार्ग की नियति है।

दक्षिणायन मार्ग का वर्णन करने के पश्चात् आचार्य ने उत्तरायण का वर्णन किया– उत्तरायण ही देवमार्ग कहलाता है। इस साधना को स्वीकार करने वाला तप और ब्रह्मचर्य का सेवन करता हुआ ज्ञानपूर्वक आत्मा का अनुसंधान करता है और उस आत्मा (परमात्म–तत्त्व) को जानकर आदित्य–लोक को जीत लेता है। इस प्रकार उत्तरायण मार्ग का यह साधक उस प्राणतत्त्व के आश्रय–भूत अमृत, अभय, परमाश्रय ईश्वर को प्राप्त करता है। वहाँ से पुनः लौटकर नहीं आता। इसे ही निवृत्ति–मार्ग कहा गया है।

अथर्ववेद के मंत्र (9.5.9) में इस संवत्सररूपी प्रजापति का वर्णन इस रूप में मिलता है–

> यह संवत्सर पाँच ऋतुरूपी पंचपादात्मक, द्वादशाकृति (बारह महीनों वाला) तथा द्युलोक के बीच में जलवाला है। इसी संवत्सर को अन्य प्रकार से भी वर्णित किया जाता है। यह सात चक्रों (सप्त लोक–भू, भुवः स्वः महः जनः तपः सत्य) तथा छह अरों (ऋतुओं) से जुड़ा हुआ है।

इसी प्रजापति को मास के रूप में वर्णित किया। मास ही प्रजापति है। इसका कृष्ण पक्ष ही रयि और शुक्लपक्ष ही प्राण है। इसीलिए विद्वान् लोग शुक्लपक्ष में नाना प्रकार की याज्ञिक इष्टियाँ करते हैं और अन्य विद्वान् ऋषि कृष्ण–पक्ष में भी स्व–साधना में संलग्न रहते हैं।

अहोरात्र (दिन और रात्रि) को भी प्रजापति कहते हैं। दिन ही प्राण है और रात्रि ही रयि है। इस प्रसंग में स्त्रीसमागम विषयक एक नियम का प्रसंगोपात्त उल्लेख करते हुए आचार्य ने कहा– जो लोग दिन के समय प्राणरूपी वीर्य का त्याग करते हैं वे शक्ति को नष्ट ही करते हैं, परन्तु जो रात्रि में संभोग–कृत्य करते हैं, वे मानो प्राकृतिक नियमों का पालन करने के कारण ब्रह्मचर्य का ही पालन करते हैं।

अन्न ही प्रजापति है, उससे ही वीर्य होता है, और वीर्य से ही ये प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं। सो जो गृहस्थ–प्रजापति व्रत का पालन करते हैं वे पुत्र–पुत्री रूप जोड़े को उत्पन्न करते हुए भी तप और ब्रह्मचर्य आदि साधनों का सम्यक् पालन करते हैं। इस तप और ब्रह्मचर्य पालन में ही सत्यरूपी ईश्वर प्रतिष्ठित है और इनका साधक ही ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है जिनमें कुटिलता, असत्य तथा छल–कपट आदि बुराइयाँ नहीं हैं। इस प्रकार प्रथम प्रश्न के उत्तर में आचार्य ने प्राण और रयि की व्याख्या करते हुए आदित्य, संवत्सर, अहोरात्र आदि की व्याख्या की।

प्रथम प्रश्न का उत्तर मिल जाने पर आगन्तुकों में से भृगु के पुत्र वैदर्भि ने महर्षि पिप्पलाद से पूछा–भगवन् कृपा कर यह बताइए कि **मानव–शरीर को कितने देव धारण करते हैं और उनमें कौन सर्वश्रेष्ठ है ?** उपनिषदों में प्राणों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करनेवाले अनेक प्रसंग आए हैं। यहाँ भी इन्द्रियों की अपेक्षा प्राणों की वरीयता सिद्ध करने के लिए इस प्रश्नोत्तर को प्रस्तुत किया गया है। वैदर्भि के प्रश्न के उत्तर में आचार्य पिप्पलाद ने कहा–निश्चय ही
आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी पाँच महाभूत हैं और इन्हीं से शरीर में वाणी, मन, नेत्र, कान आदि इन्द्रियाँ स्व–स्व कार्यों को सम्पादित करती हैं। अब प्राणों की श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए ऋषि ने एक रूपक बाँधा और कहा–ये सब इन्द्रियाँ प्रकाशित होकर परस्पर स्पर्धा करती हुई अपनी–अपनी श्रेष्ठता की घोषणा करने लगीं। उनका कहना था कि हमारे कारण ही शरीर टिका हुआ है, अन्यथा वह नष्ट ही हो जाता।

तब इन्द्रियों से श्रेष्ठ प्राण ने कहा–तुम मोहग्रस्त होकर बात कह रही हो, जो कि वास्तविकता से दूर है। वस्तुतः मैं प्राण ही पञ्चधा (प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान) होकर शरीर को स्तम्भवत् धारण करता। इन्द्रियों को प्राण की बात में श्रद्धा नहीं हुई, तब उन्हें वस्तुस्थिति का ज्ञान कराने के लिए प्राण ने गर्वपूर्वक शरीर से निकलना आरम्भ किया। परिणाम यह हुआ कि प्राणों के उत्क्रमण करने पर सब अवशिष्ट इन्द्रियाँ भी शरीर से निकलने लगीं और जब प्राण पुनः शरीर में स्थिर हुआ तो इन्द्रियाँ भी स्थिर हो गईं। इससे सिद्ध हुआ कि इन्द्रियों की शक्ति शरीर में प्राणों की अवस्थिति पर ही निर्भर है। जिस प्रकार शहद के छत्ते की मक्खियाँ मधुकरराज (रानी मक्खी) के निकलने पर छत्ते से उड़ जाती हैं और उसके रहने पर ही छत्ते में रहती हैं, उसी प्रकार वाणी, चक्षु और श्रोत्र भी प्राणों के निकलने पर शरीर से निकल जाते हैं। इस प्रकार शरीर में प्राणों की महत्ता को अनुभव कर इन इन्द्रियों ने प्राणों की स्तुति करना आरम्भ किया–

"यह प्राण ही अग्निरूप से प्रकाशित होता है, यह प्राण ही शरीररूपी ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करनेवाला सूर्य है। यही ऐश्वर्यों की वर्षा करनेवाला मेघ है, यही वायु के तुल्य शक्तिशाली है और यही पृथिवी के तुल्य शरीर का धारक और आश्रय स्थान है। प्राण ही रयिरूप पोषक है। दिव्य शक्तिसम्पन्न देव है। यही कारण और कार्यरूप तथा अविनाशी अमृत है। जिस प्रकार रथ की नाभि में अरे प्रतिष्ठित रहते हैं, उसी प्रकार इस प्राण में ऋक्, यजुः तथा साम (त्रिविध मंत्रोंवाले चारों वेद), यज्ञ, क्षत्र तथा ब्रह्म की शक्तियाँ प्रतिष्ठित रहती हैं। अर्थात् वेदों का अध्ययन, यज्ञक्रिया, क्षात्र एवं ब्रह्म बल को सम्पादित करने आदि के सभी कार्य प्राण–शक्ति की सहायता से ही सम्पन्न होते हैं।

> "हे प्राण ! तू ही प्रजापति–रूप में गर्भ में निवास करता है और तू ही पुनः शिशु की प्राणशक्ति के रूप में जन्म लेता है। तेरे लिए ही तेरी प्रजारूपी इन्द्रियाँ बलि

शेष पृष्ठ 06 पर ☞

मैं तुम्हें द्वेषरहित करता हूँ (द्वितीय रश्मिः)

● आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार

'अविद्वेषं कृणोमि वः।' "मैं तुम्हें द्वेषरहित करता हूँ।" – अथर्व. 3.30.1

संक्षिप्त अन्वयार्थ–{अहम्} **(अविद्वेषं कृणोमि वः)** मैं तुम्हें द्वेषरहित करता हूँ।

अन्वयार्थ–हे मनुष्यो! मैं तुम सबको द्वेषरहित करता हूँ वा करना चाहता हूँ।

व्याख्या – परमपिता परमेश्वर घर–परिवार में, सभा–समाज में, ग्राम–नगर वा देश में रहने वाले हम सब मनुष्यों को द्वेषरहित करना चाहता है, अप्रीतिरहित करना चाहता है। अर्थात् घर–गृहस्थ में, समाज वा राष्ट्रादि में रहते हुए हमारे भीतर जो दूसरों को देखकर, दूसरों को सुनकर, दूसरों के ज्ञान, धन, यश, मान–सम्मान को देख–सुनकर खुश न होने, प्रसन्न न होने, तृप्त न होने के संस्कार हैं, विचार हैं, व्यवहार हैं, उन्हें प्रभु हमारे भीतर से बाहर निकालना चाहता है। इतना ही नहीं हमारे भीतर जो दूसरों के प्रति द्वेष ही नहीं वरन् जो विद्वेष के, विशेष द्वेष के, अत्यन्त द्वेष के, अत्यन्त अप्रीति के, अत्यन्त घृणा के भाव हैं, जो कि हमें कभी दूसरों को देख–सुनकर प्रसन्न नहीं होने देते, जो कि हमें किसी के धन–वैभव, सुख–सौभाग्य, मान–सम्मान, यश–कीर्ति, उन्नति–समुन्नति आदि–आदि पर तृप्त नहीं होने देते, गुलाब के फूल के समान खिलने नहीं देते, न ही हर्ष–खुशी मनाने देते हैं। ऐसे अत्यन्त विद्वेष के, अत्यन्त अप्रीति के भावों को प्रभु हमारे भीतर से निकाल बाहर करना चाहता है। गृहणी की मार्जनी– झाड़ू के समान इस अत्यन्त अप्रीति वा घृणा के भावों को कूड़े–कचरे के समान बाहर कर वह हमारे मन–मन्दिर को साफ–सुथरा कर उसमें फिर अत्यन्त प्रीति के ऐसे भावों को भरना चाहता है कि जिसके परिणामस्वरूप फिर हम केवल परिवार के ही नहीं वरन् सब संसार के मनुष्य एक–दूसरे को देखकर तृप्त होंगे, एक–दूसरे के धन–वैभव को देखकर भी तृप्त होंगे, एक–दूसरे के मान–सम्मान को देखकर भी तृप्त होंगे, एक–दूसरे की कीर्ति–यश को देखकर भी तृप्त होंगे, एक–दूसरे की उन्नति–समुन्नति को निहार कर भी प्रसन्न होंगे, एक–दूसरे की पद– प्रतिष्ठा को देखकर भी गद्गद् होंगे।

वह प्रभु इन मनुष्यों को द्वेष से, विद्वेष से, अर्थात् अप्रीति से, अत्यन्त अप्रीति से क्यों दूर करना चाहता है, इसलिए कि प्रभु जानता है कि जिसमें द्वेष–विद्वेष वर्त्तमान रहेगा, दूसरों के प्रति अप्रीति और अत्यन्त अप्रीति रहेगी तो फिर उस व्यक्ति को किसी की अच्छी से अच्छी वृत्ति, किसी की पवित्र से पवित्र दृष्टि, और उसके आधार पर उसकी होने वाली, पवित्र से पवित्र कृतियों में भी दोष दीखेंगे, कमियाँ दीखेंगी, त्रुटियाँ दीखेंगी, उसके निःस्वार्थ व्यवहारों में भी स्वार्थ दीखेंगे, छलकपट दीखेंगे इत्यादि। और उसके परिणामस्वरूप उसकी फिर उन व्यक्तियों से घृणा हो जाएगी, नफरत हो जाएगी। फिर इतना ही नहीं वरन् उससे फिर उनकी निन्दा भी होगी, उनकी बुराई भी होगी, उनकी चुगली भी होगी, उनकी जगह–जगह बदनामी भी होगी, उनकी हानि (नुकसान) भी होगी, उनकी हिंसा भी होगी, उससे उनके प्रति दुरित भी होंगे, उनके अपमान भी होंगे, उनके तिरस्कार भी होंगे इसलिए वह प्रभु हमें इस द्वेष से, इस विद्वेष से रहित करना चाहता है। सामवेद के 426 वें मन्त्र में कहा है–

न अमँहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम्।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अतिद्विषः।। –साम. 426

(देवासः यम् अर्यमा मित्रः वरुणः द्विषः अति नयति, तं मर्त्यम् न अहंः, न दुरितं अष्ट) हे देवो! हे विद्वानो! हे ज्ञानियो! जिस मनुष्य 'को न्यायकारी मित्रस्वरूप वरणीय प्रभु द्वेष से तार देता है, उस मनुष्यो को न कोई अँहस, अर्थात् पाप और न ही कोई दुरित अभिव्याप्त कर सकता है, अभिभूत कर सकता है। इससे यह ज्ञात हुआ कि जिस मनुष्य के हृदय में किसी के प्रति द्वेष होता है, अप्रीति होती है, घृणा होती है, नफरत होती है, उसी के हाथों से ही अगलों के प्रति अँहस होता है, अगलों के प्रति पाप होता है, अगलों के प्रति अपराध होता है, अगलों के प्रति हिंसा होती है और इसी द्वेष ही के कारण ही मनुष्य से दूसरों के प्रति दुरित होता है, दूसरों के प्रति दुर्भावना होती है, दूसरा के प्रति दुर्व्यवहार होता है, दूसरों के प्रति बुरे से बुरा कटु व्यवहार होता है।

अब जिस द्वेष, अप्रीति, घृणा, नफरत, शत्रुता के कारण मनुष्य के द्वारा दूसरों के प्रति अँहस होते हैं, दुरित होते हैं, उस द्वेष विद्वेष को प्रभु हमारे भीतर से निकालना चाहता है, ताकि हममें प्रीति पनप सके। इस प्रकार हमारे हृदय में दूसरों के प्रति जब प्रीति पनप जाएगी और फिर सब में प्रभु को बसा हुआ समझकर भी जब हम उन सब के प्रति प्रीति रखेंगे, तो उसके परिणामस्वरूप हम जिसको देखेंगे, जिसको सुनेंगे, उसके प्रति हमारे हृदय में प्रीति उमड़ेगी। प्रीतिवशात् उनको, फिर उन कार्यों को देखकर हममें उसका सही मूल्यांकन करने की वृत्ति होगी। उनके गुण फिर हमें गुण ही अनुभव होंगे, उनके उत्तम कार्य भी हमें फिर उत्तम कार्य ही दीखेंगे। उनके पद और उनकी प्रतिष्ठा को देखकर हम सब तब प्रसन्न होंगे, उनके मान–सम्मान को देखकर तब हम फूले नहीं समाएँगे। फिर हमारे द्वारा उनके प्रति अँहस नहीं होंगे, पाप नहीं होंगे, अपराध नहीं होंगे, दुरित नहीं होंगे, दुश्चिन्तन नहीं होंगे, दुर्भावनाएँ नहीं होंगी, दुर्व्यवहार नहीं होंगे, बल्कि फिर जिनके साथ भी हम मिलेंगे, बड़े प्यार से मिलेंगे, जिनसे बात करेंगे बड़े प्यार से करेंगे, जिनकी बात सुनेंगे बड़े प्यार से सुनेंगे, जिनकी ओर देखेंगे, बड़े प्यार से और पवित्र भाव से देखेंगे, जिस के साथ जो भी हमारा व्यवहार होगा, वह बड़ा मिठासपूर्ण ही होगा, बड़ा सौहार्द पूर्ण ही होगा, बड़ा हृदयावर्जक व्यवहार ही होगा। फिर हमारे उस व्यवहार में स्नेह होगा, प्यार होगा, स्नेहसहानुभूति होगी, मान–सम्मान होगा। इससे फिर तब हम सब का जीवन बड़ा ही सुखमय व्यतीत होगा, बड़ा ही शान्तिमय व्यतीत होगा। बड़ा ही आनन्दमय व्यतीत होगा।

लेखक की पुस्तक
'वैदिक रश्मियाँ' से साभार

☞ पृष्ठ 05 का शेष

ऋषियों के प्रश्नोत्तर

प्रस्तुत करती हैं। तू ही देवताओं को यज्ञ–भाग पहुँचानेवाला अग्नि है। पितरों को उनका भक्ष्य प्रदान करता है, ऋषियों (इन्द्रियों) का पुष्टि–प्रदाता तथा शरीर के अंगों को शक्ति देनेवाला है। हे प्राण ! तू ही अपनी तेजस्विता के कारण रुद्र है, रक्षण–शक्ति के कारण इन्द्र है। तू ही अंतरिक्ष में विचरण करता है तथा तू ही ज्योतिष्मान् नक्षत्रों का स्वामी सूर्य है।"

अभिप्राय यह है कि प्राण को इन्द्रवत् तेजस्वी, रुद्र के तुल्य शक्तिमान् तथा नक्षत्रों को भी सूर्य के तुल्य शक्ति–प्रदाता कहा गया है।

प्राण ही मेघ–रूप में वर्षा करता है। जलरूपी पर्जन्य–वृष्टि होती हो तो प्रजाएँ यह जानकर प्रसन्न होती हैं कि अब यथेष्ट अन्न होगा। हे प्राण ! तू व्रात्य है (स्वभाव से शुद्ध तथा किसी संस्कार की अपेक्षा न रखनेवाला), तू ही ऋषि (चिन्तन–शक्ति का अधिष्ठाता) है तथा अत्ता (सर्वभक्षक–सबका ग्रहण करनेवाला), तू ही विश्व का श्रेष्ठ स्वामी है। हम तो तुझे अन्नादि भक्ष्य पदार्थ प्रदान करानेवाले तेरे सहायक हैं। इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए गए भक्ष्य पदार्थों से ही प्राणशक्ति बलवती होती है। हे मातरिश्वारूपी प्राण ! तू हमारा पिता, पालक है।

अंत में इन्द्रियों ने स्वशक्ति–वर्धनार्थ प्रार्थना करते हुए प्राण से कहा–

"यह जो तेरी व्यापक शक्ति वाणी में, श्रोत्र में, चक्षु में तथा मन में फैली हुई है, उसे हमारी इन्द्रियों के लिए मंगलकारिणी बना तथा इस शरीर से तू मत निकल। अन्यथा न तो हम इन्द्रियाँ ही रहेंगी और न यह शरीर ही रह पाएगा। वस्तुतः द्यौ, अन्तरिक्ष तथा पृथिवीलोक में जो कुछ प्रतिष्ठित है, उसका आधार और वशकर्ता प्राण ही है। हे प्राण ! तू माता के तुल्य पुत्रों की रक्षा कर तथा हमें ऐश्वर्य एवं बुद्धि प्रदान कर। प्राणों द्वारा इन्द्रियों की रक्षा और पालन वैसे ही होता है, जैसे माता स्व–सन्तान का पालन करती है।" इसी प्रकार मनुष्य को ऐश्वर्य और बुद्धि भी प्राणशक्ति के प्रबल होने से ही प्राप्त होते हैं। इस प्रकार प्राणों की महिमा निरूपित करनेवाला यह संवाद समाप्त हुआ।

क्रमशः
प्रश्नोपनिषद् के आधार पर
'उपनिषदों की कथाएँ' से साभार

मानव-उन्नति का मुख्य साधन - सत्योपदेश

● भावेश मेरजा

{भावेश मेरजा जी आर्यसमाज एवं वैदिक वाङ्मय के गम्भीर अध्येता है। आप ऋषि प्रणीत ग्रन्थों में लिखित वैदिक सिद्धान्तों को जन सामान्य के लिए सरल भाषा में प्रस्तुत करते हैं। हाल में सत्यार्थ प्रकाश का मर्म साधारण पाठकों तक पहुँचाने के उद्देश्य से "सत्यार्थ प्रकाशक" नाम से एक ग्रन्थ की रचना की है। पाठकों ने इस प्रयास की सराहना की है।

श्री भावेश मेरजा की अनुमति से हम इस पुस्तक के अंश प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है पाठकों को अच्छा लगेगा। }

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का प्रयोजन सत्य–अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाए; किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।

जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत–वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त रहता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं होता इसीलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्य–असत्य का स्वरूप समर्पित कर दें। पश्चात् मनुष्य लोग स्वयं अपना हित–अहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके, सदा आनन्द में रहें।

यद्यपि मनुष्य का आत्मा सत्य–असत्य का जाननेवाला है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़, असत्य पर झुक जाता है परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रखी है, और न किसी का मन दुखाना वा न किसी की हानि का तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य–जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्य–असत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, यही मेरा तात्पर्य है, क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य–जाति की उन्नति का कारण नहीं है। {समुल्लास–1}

मनुष्य का आत्मा यथायोग्य सत्य–असत्य के निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है। जितना अपना पठित वा श्रुत है, उतना निश्चय कर सकता है। यदि एक मत–वाले दूसरे मत–वालों के विषयों को जानें और अन्य न जानें तो यथावत् संवाद नहीं हो सकता, किन्तु अज्ञानी किसी भ्रमरूप बाड़े में घिर जाते हैं।

जो–जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं वे तो सबमें एक–से हैं, झगड़ा झूठे विषयों में होता है अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठा हो, तो भी कुछ थोड़ा–सा विवाद चलता है। यदि वादी–प्रतिवादी सत्य–असत्य के निश्चय के लिए वाद–प्रतिवाद करें, तो अवश्य निश्चय हो जाय। {समुल्लास–13}

जब तक वादी–प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद वा लेख न किया जाए तब तक सत्य–असत्य का निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान् लोगों में सत्य–असत्य का निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानों को महा–अन्धकार में पड़कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है, इसलिए सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद वा लेख करना हमारी मनुष्य–जाति का मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्यों की उन्नति कभी न हो।

यद्यपि आज–कल प्रत्येक मत में बहुत–से विद्वान् हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र–सिद्धान्त अर्थात् जो–जो बातें सबके अनुकूल, सबमें सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक–दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें–वर्तावें, तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर, अनेकविध दुःखों की वृद्धि और सुखों की हानि होती है। इस हानि ने, जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दुःखसागर में डुबा दिया है। इनमें से जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्य में धर प्रवृत्त होता है, उससे स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर, अनेक प्रकार विघ्न करते हैं। परन्तु – **'सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः'** (मुण्डक उपनिषद् 3.1.6) अर्थात् सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय होता है और सत्य से ही विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है। इस दृढ़ निश्चय के आलम्ब से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थ–प्रकाश करने से नहीं हटते। यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि **'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्'** (गीता 18.37) इसका अभिप्राय यह है कि जो–जो विद्या और धर्मप्राप्ति के कर्म हैं, प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं। ऐसी बातों को चित्त में धरके मैंने इस ग्रन्थ को रचा है।

इसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो–जो सब मतों में सत्य–सत्य बातें हैं, वे–वे सबमें अविरुद्ध होने से उनका स्वीकार करके, जो–जो सब मतमतान्तरों में मिथ्या बातें हैं, उन–उनका खण्डन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रखा है कि सब मतमतान्तरों की गुप्त वा प्रगट बुरी बातों का प्रकाश कर, विद्वान्–अविद्वान् सब साधारण मनुष्यों के सामने रखा है, जिससे सबसे सबका विचार होकर, परस्पर प्रेमी होके, एक सत्य–मतस्थ होवें।

यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और वसता हूँ, तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर, यथातथ्य प्रकाश करता हूँ, वैसा ही दूसरे देश वा मत–वालों के साथ भी वर्तता हूँ। जैसा स्वदेशवालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ, वैसा विदेशियों के साथ भी वर्तता हूँ; तथा सब सज्जनों को भी वैसा वर्तना योग्य है। क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता, तो जैसे आजकल के मत–वाले स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और उसको बन्द करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बहिः हैं। क्योंकि जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य–शरीर पाके वैसे ही कर्म करते हैं, तो वे मनुष्य–स्वभावयुक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है, वही 'मनुष्य' कहाता है। और जो स्वार्थवश होकर परहानि–मात्र करता रहता है, वह जानो 'पशुओं का बड़ा भाई' है।

जो कोई इस ग्रन्थ को कर्त्ता (लेखक) के तात्पर्य से विरुद्ध–मनसा से देखेगा, उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा। क्योंकि वाक्यार्थ–बोध में चार कारण होते हैं – आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य। जब इन चारों बातों पर ध्यान देकर, जो पुरुष ग्रन्थ को देखता है, तब उसको ग्रन्थ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है–

1. **आकांक्षा**–किसी विषय पर वक्ता की और वाक्यस्थ पदों की आकांक्षा परस्पर होती है।
2. **योग्यता**–वह कहाती है कि जिससे जो हो सके, जैसे जल से सींचना।
3. **आसत्ति**–जिस पद के साथ जिसका सम्बन्ध हो, उसी के समीप उस पद को बोलना वा लिखना।
4. **तात्पर्य**–जिसके लिए वक्ता ने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो, उसी के साथ उस वचन वा लेख को युक्त करना।

बहुत–से हठी–दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मत–वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फसके नष्ट हो जाती है। इसलिए जैसा मैं पुराणों, जैनियों के ग्रन्थों, बाइबल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर, उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य–जाति की उन्नति के लिए प्रयत्न करता हूँ, वैसा सबको करना योग्य है।

इससे एक यह प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्यों को धर्म–विषयक ज्ञान बढ़कर यथायोग्य सत्य–असत्य मत और कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य कर्म–सम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कर्त्तव्य–कर्म का स्वीकार तथा असत्य और अकर्त्तव्य–कर्म का परित्याग करना सहजता से हो सकेगा।

यह लेख केवल मुनष्यों की उन्नति और सत्य–असत्य के निर्णय के लिए है अर्थात् सब मतों के विषयों का थोड़ा–थोड़ा ज्ञान होवे, इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक–दूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें। मेरा न किसी अन्य मत पर, न इस (मुसलमानों के) मत पर झूठ–मूठ बुराई वा भलाई लगाने का प्रयोजन है, किन्तु जो भलाई है, वही भलाई और जो बुराई है, वही बुराई सबको विदित होवे। न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके। और सत्य–असत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

जो आर्य नहीं, वो आर्य समाजी क्यों?

● रामनिवास 'गुणग्राहक'

आर्यसमाज के अथवा प्रतिनिधिसभाओं के मंत्री–प्रधान आदि के साथ मेरा कोई व्यक्तिगत रागद्वेष नहीं है। एक मनुष्य का मनुष्य के साथ जो मानवीय सम्बन्ध या अपनापन होना चाहिए, उतना अपनापन सच्चे अर्थों में मेरे हृदय में सबके प्रति है। संस्कृत की सूक्ति–**'व्यवहारेण हि जायन्ते मित्रवः शत्रवस्तथा'** के अनुसार किसी के व्यवहार के अनुसार ही मित्रता– शत्रुता होती है। आश्चर्य जनक सच यह है कि यह मित्रता–शत्रुता विकट सम्बन्धों में ही प्रायः अधिक होती है। चूंकि हम सब आर्य कहलाने वाले ईश्वर की वेदवाणी से जुड़े हैं, महर्षि दयानन्द के अनुयायी हैं। हम सबका घोषित लक्ष्य वेदविद्या को जीवन का अंग बनाकर उसका वाणी– व्यवहार के द्वारा प्रचार–प्रसार करके संसार का उपकार करना ही है। इन सबके लिए हमें पारस्परिक परिचय–प्रेम व सहयोग–समर्थन की सतत आवश्यकता है। ये सब बातें हम सब आर्यों की परस्पर निकटता की घोषणा करती हैं। उसी निकटता से प्रेरित होकर मेरा हृदय आर्य समाज के मंत्री–प्रधान आदि से एक प्रार्थना करना चाहता है कि वे या तो सच्चे आर्य बनकर सिद्धान्त निष्ठ आर्यों के साथ परस्पर प्रेम–सौहार्द बनाएँ, वेद प्रचारार्थ नाम के आर्यों को नहीं, काम के आर्यों को आगे बढ़ाएँ। वेद प्रचार लच्छेदार भाषणों–व्याख्या से नहीं होता, वेद प्रचार वैदिक आचार–विचार बनाने से होता है। महर्षि यास्क 'वचन–**'सत्सु तायते'** के अनुसार सत्य सज्जनों, सदाचारी विद्वानों के द्वारा ही फैलाया–प्रचारित किया जा सकता है! वर्तमान में लाखों रुपये खर्च करके भी हम नए लोगों को आर्य नहीं बना पा रहे हैं। किसी को आर्य बनने के लिए जिस निर्माण कला की आवश्यकता है, वह हमारे साधारण विद्वानों के जीवन में नहीं है। भाषण कला विशारदों को ही प्रचारार्थ बुलाते हैं। इस प्रवृत्ति के चलते हमारा पतन इतना बढ़ गया है कि हमारे डॉ. धर्मवीर जी व डॉ. वेदपाल जी जैसे जीवन दानी, वेदविद्या के लिए सर्वात्मना समर्पित विद्वानों का एक निर्धारित समय काट कर भजन उपदेशिका को दे दिया जाता है। हमारी वेदविदुषी आचार्या सूर्यादेवी आचार्या प्रियंवदा जी आदि की गणना तो हमारे उच्च कोटि के वेदप्रचारकों में है। यूट्यूब पर लोक– लुभावने संगीत और लच्छेदार भाषणबाजी देखकर प्रचारकों को वेद प्रचार के लिए आमन्त्रित करना आर्य समाज को विष देने से भी बड़ा पाप है। हम–**हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितंमुखम्** जैसे वेदादेश को पूर्णतः भूल चुके हैं। हम नहीं सोच पा रहे कि लोक– लुभावनी चमक–दमक हमारे वेदप्रचार उत्सवों–सम्मेलनों में जितनी बढ़ती जाएगी, सत्य का मुख उतना ही ढँकता– छिपता और हमसे दूर होता जाएगा। वेद प्रचार भाषण बाजी से नहीं, सत्योपदेश से ही होगा। दक्षिणा की माँग करने वाले, ए.सी. जैसी सुख–सुविधाएँ माँगने वाले सत्य का उपदेश करने की योग्यता नहीं रखते! सत्य बोलने वाले दयानन्द के साथ लोगों ने क्या किया था? अब भी वह मनोवृत्ति बदली नहीं है। अब तो आर्य समाज में भी सत्य बोलने वाले को उपेक्षा रूपी विष दिया जाता है। सुधी पाठक ! इसे अन्यथा न लेना, सच में किसी की उपेक्षा करना, किसी को मुख्य धारा से काट कर रख देना, वह भी इसलिए कि यह खरा सच बोलता है, मंच से हमारी प्रशंसा नहीं करता – आर्यसमाज को विष देने जितना ही बड़ा पाप है। ऋषि कहते हैं कि सत्योपदेश के बिना मनुष्य जाति के कल्याण का अन्य कोई उपाय नहीं और हमारे पदाधिकारी हैं कि सच बोलने वाले को अनुपयोगी–अनावश्यक मानकर तिरस्कृत कर देते हैं! यह सत्यवादी उपदेशक का तिरस्कार नहीं, सत्य का तिरस्कार है। कल वही मंत्री–प्रधान आदि की प्रशंसा करते हुए लच्छेदार भाषण देना प्रारम्भ कर दे तो वही सबका चहेता बन जाए।

मैं एक बहुत कड़वी मगर बहुत ही उपयोगी, सुखद और पुण्यप्रद प्रार्थना बहुत सीधे–सरल शब्दों में करना चाहता हूँ। मेरी प्रार्थना यह है कि वे या तो स्वयं को सिद्धान्त निष्ठ आर्य बनाएँ। पंच महायज्ञों का अनुष्ठान नित्य नियम और श्रद्धा सहित करना प्रारम्भ कर दें। ऐसा करने से धीरे–धीरे उनका मन–मस्तिष्क भी स्वीकार करने लगेगा कि हमसे कहाँ और कितनी बड़ी भूलें हो रही हैं। यह प्रभु प्रदत्त पुण्य प्रसाद है कि संध्या–स्वाध्याय आदि के अनुष्ठान, से सत्य–धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होने लगती है और यह श्रद्धा बनी रहे, बढ़ती रहे तो इसके प्रभाव से असत्य – अधर्म का प्रवेश द्वार बन्द होने लगता है। पंच महायज्ञों के अनुष्ठान से ही हम सच्चे आर्य बन सकते हैं। सच्चे आर्य बनकर ही हम सत्य का और सत्यवादी आर्यों का सम्मान करने योग्य बनते हैं। यही मानव मनोविज्ञान है। मनुष्य का उत्थान–पतन यही सिद्धान्त तय करता है। बुरा मानने की नहीं, विचार करने की आवश्यकता है। यदि वेद–विद्या का प्रचार–प्रसार व पुनरुद्धार करने वाले महर्षि दयानन्द मानव जाति के सबसे बड़े हितैषी, सबसे बड़े धर्मात्मा कहे जा सकते हैं। मानवता पर उनके सर्वाधिक उपकार हैं तो उनके जीवन भर की तपः साधना के सुफल के रूप में प्राप्त वेदविद्या के स्रोत रूपी आर्य समाज के पदों पर पत्थर की तरह जमे बैठे और उन स्रोतों से बह सकने वाली ज्ञान गंगा को रोकने वाले संसार के सबसे बड़े शत्रु क्यों नहीं कहे जाएँगे? आर्य समाजें वेद–विद्या के प्रचार–प्रसार के स्रोत नहीं हैं क्या? महर्षि दयानन्द ने जीवन भर दुःख–दर्द, पीड़ा–प्रताड़ना सह कर प्रभु की जिस वेदवाणी के सत्य–अर्थों को विश्व कल्याणार्थ प्रकाशित किया। महर्षि दयानन्द के बाद उसी तप–लगन और साधना के पथ पर चलकर आर्यसमाज के माध्यम से आर्य विद्वानों, आर्य समाजियों को उस वेदविद्या को विश्व–मानव के उपकारार्थ प्रचारित प्रसारित करना था। दो–तीन पीढ़ी तक आर्यों ने उसी तप–लगन भट्टी में तपकर वेदविद्या का सफल प्रचार–प्रसार किया भी। मगर जैसे–जैसे लोकैषणा और वित्तैषणा से लेकर लोगों ने गुटबाजी की प्रवृत्ति के सहारे आर्य समाज के पदों पर कुण्डली मारकर बैठना प्रारम्भ किया, वैसे–वैसे आर्य समाजों के माध्यम से वेदविद्या का प्रचार–प्रसार कम होता गया और उसका स्थान चमक–दमकने ले लिया, भाषण बाजी और चटुकुले बाजी ने ले लिया इस स्थिति को देखकर वेदविद्या के प्रचार–प्रसार को अवरुद्ध करने वालों को वेदविद्या के बाधक, अवरोधक और समाप्त करने वाले न कहें तो क्या कहें? अगर ये लोग सच में ही वेदविद्या के बाधक हैं, वेद विद्या के स्रोत रूपी आर्य समाजों से वेद विद्या को लोप करने वाले को मानवता का सबसे बड़ा शत्रु और सबसे बड़ा अपराधी न कहें तो क्या कहें ? महर्षि दयानन्द ने धर्म और ईश्वर के नाम में फैले पाखण्डों का खण्डन जिस तीव्रता व कठोरता से किया, महर्षि दयानन्द और वेद विद्या के नाम पर अवैदिकता फैलाकर धर्मलोप करने वाले गुण कर्म से आर्य न होकर भी आर्य समाजों पर दशकों से कब्जा करने वालों का खण्डन उससे भी अधिक तीव्रता व कठोरता से करने का साहस जिस दिन सच्चे आर्यो में उत्पन्न होने लगेगा, वह दिन मानवता के लिए सबसे अधिक शुभ और कल्याणकारी होगा।

आर्यसमाज का तीसरा और सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ग है, वह है हमारा उपदेशक वर्ग। उपदेशक वर्ग में पुरोहित से लेकर भजनोपदेशक, वेदोपदेशक और हमारे संन्यासी आते हैं। यद्यपि संन्यासी आर्यसमाज का सांगठनिक घटक नहीं हैं, पुनरपि उपदेशक होने के कारण आर्य समाज के प्रचारक वर्ग में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्वाध्याय, साधना और वैराग्य युक्त आर्यजन ही मोह–ममता मुक्त होकर संन्यास धारण करें। एक गृहस्थ विद्वान् की अपेक्षा संन्यासी अधिक निर्भयता से सत्य बोल सकता है। आज आर्यसमाजी विद्वान् और आर्य संन्यासी कहाने वाले सत्य का साथ नहीं दे पा रहे। ऐसा नहीं कि आर्यसमाज में ऐसी योग्यता वाले विद्वान्–संन्यासी हैं नहीं। ऐसे बहुत

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

प्रार्थना यह है कि वे या तो स्वयं को सिद्धान्त निष्ठ आर्य बनाएँ। पंच महायज्ञों का अनुष्ठान नित्य नियम और श्रद्धा सहित करना प्रारम्भ कर दें। ऐसा करने से धीरे-धीरे उनका मन-मस्तिष्क भी स्वीकार करने लगेगा कि हमसे कहाँ और कितनी बड़ी भूलें हो रही हैं। यह प्रभु प्रदत्त पुण्य प्रसाद है कि संध्या-स्वाध्याय आदि के अनुष्ठान, से सत्य-धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होने लगती है और यह श्रद्धा बनी रहे, बढ़ती रहे तो इसके प्रभाव से असत्य - अधर्म का प्रवेश द्वार बन्द होने लगता है। पंच महायज्ञों के अनुष्ठान से ही हम सच्चे आर्य बन सकते हैं। सच्चे आर्य बनकर ही हम सत्य का और सत्यवादी आर्यों का सम्मान करने योग्य बनते हैं। यही मानव मनोविज्ञान है।

☞ पृष्ठ 08 का शेष

जो आर्य नहीं, ...

विद्वान्–संन्यासी आर्यसमाज में हैं, जो सत्य कहने की सामर्थ्य रखते है मगर लगता है कि शिष्टाचार वश या सुविधा जीवी होने के कारण वे सच बोलने से बचते हैं। वे नहीं देख पा रहे कि अपने बहुत छोटे प्रयोजन के लिए सच न बोलकर मानवता का कितना बड़ा अहित कर रहे हैं। महर्षि दयानन्द के तप–त्याग और आत्म बलिदान से प्राप्त वैदिक धर्म के सच्चे स्वरूप को सिद्धान्तहीनता के कारण निरन्तर प्रदूषित होते हुए मौन भाव से देखना हमारे उन विद्वानों व संन्यासियों के लिए भी पुण्यप्रद नहीं कहा जा सकता। उन्हें–**'मौनात् सत्यं विशिष्यते'** के साथ–**'बदन ब्रह्माऽवदतो वनीयान'** जैसे ऋषि वाक्यों की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। मौन रहने से सत्य बोलना उत्तम है तथा बोलने वाला ब्राह्मण न बोलने वाले से श्रेष्ठ है। यही वैदिक ज्ञान–परम्परा, वैदिक धर्म और वैदिक संस्कृति का आधारभूत सिद्धान्त है। क्या सब मौन भाव से देखना एक आर्य विद्वान्, एक आर्य संन्यासी के लिए सहज है, सुखद है? ऋषि दयानन्द भी सब कुछ देखकर आपकी–हमारी तरह मौन ही रहते, अपनी साधना में लगे रहते तो क्या हमें वेदविद्या का सत्य–स्वरूप मिलता ? क्या आर्य समाज की स्थापना होती? क्या हमें वह सब सुख–सम्मान मिलता जो आज मिल रहा है? हे विद्वानो! हे संन्यासियो ! जैसे देव दयानन्द ने अपनी आने वाली पीढ़ियों के सुखद भविष्य के लिए तिल–तिल जलकर वेदविद्या का, वैदिक धर्म का पुनरुद्धार किया, ठीक वैसे ही हमें दयानन्द का वर्तमान प्रतिनिधि बनकर कम से कम वैदिक धर्म के उस उज्ज्वल स्वरूप को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित बनाए रखने के पुण्य प्रयास तो करने ही चाहिएँ। महर्षि दयानन्द ने तो पाँच हज़ार वर्षों से निरंतर प्रदूषित होते रहने वाले वैदिक धर्म का सत्य– स्वरूप प्रकट करने का दुःसाध्य पुरुषार्थ किया हम उसको बनाए रखने के लिए आवाज़ ही न उठाएँ तो क्या हमारी गिनती ऋषिभक्तों, सच्चे आर्यों में की जा सकेगी ? इस काम में कितनी सफलता–असफलता हाथ लगेगी, यह विचारना हमारा काम नहीं' **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'** के अनुसार हम केवल उचित रीति से कर्म करें, फल तो ईश्वाराधीन है। आर्य न होकर भी जो आर्य समाजी बने हुए हैं, उनके विरुद्ध आवाज उठेगी तभी परिस्थितियों में गुणात्मक परिवर्तन आएगा। यह पुण्य कार्य थोड़ा–सा साहस जुटाकर जितना शीघ्र किया जाएगा, उतना ही सुगम, सरल और सफल होगा। परमात्मा सच्चे सिद्धान्त–जीवी आर्यों के हृदय में सत्य के प्रति सशक्त श्रद्धा प्रदान करें।

गाँव–सूरौता, भरतपुर (राज.)

☞ पृष्ठ 07 का शेष

मानव-उन्नति का ...

इच्छा हो, वह न माने, वा माने; किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता।

और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर, गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करें और हठियों का हठ–दुराग्रह न्यून करें–करावें; क्योंकि पक्षपात से क्या–क्या अनर्थ जगत् में न हुए और न होते हैं। सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभंगुर जीवन में पराई हानि करके स्वयं लाभ से रिक्त रहना और अन्य को भी रिक्त रखना मनुष्यपन से बहिः है।

यह लेख हठ–दुराग्रह, ईर्ष्या–द्वेष, वाद–विवाद और विरोध घटाने के लिए किया गया है, न कि इनको बढ़ाने के अर्थ। क्योंकि एक–दूसरे की हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुँचाना, हमारा मुख्य कर्म है। {सम्मुलास–14}

मेरे इस कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें, क्योंकि मेरा तात्पर्य किसी की हानि वा विरोध करने में नहीं, किन्तु सत्य–असत्य का निर्णय करने–कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्यायदृष्टि से वर्तना अति उचित है। मनुष्य–जन्म का होना सत्य–असत्य का निर्णय करने–कराने के लिए है, न कि वादविवाद, विरोध करने–कराने के लिए।

इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो–जो अनिष्ट फल हुए हैं, होते हैं और होंगे, उनको पक्षपातरहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब–तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्ध–वाद न छूटेगा तब–तक अन्योन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेषकर विद्वज्जन ईर्ष्या–द्वेष छोड़कर सत्य–असत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और अंसत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिए यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इन (मत–मतान्तर वाले) विद्वानों के विरोध ने ही सबको विरोध–जाल में फँसा रखा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फँसकर सबके प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐक्यमत हो जाएँ। {सम्मुलास–11}

ऐसे ही अपने–अपने मत वाले सब कहते हैं कि हमारा ही मत अच्छा है, बाकी सब बुरे। विना हमारे मत के दूसरे मत से मुक्ति नहीं हो सकती। अब हम तुम्हारी बात को सच्ची मानें वा उनकी ? हम तो यही मानते हैं कि सत्यभाषण, अहिंसा, दया आदि शुभगुण सब मतों में अच्छे हैं और बाकी वाद–विवाद, ईर्ष्या–द्वेष, मिथ्याभाषणादि कर्म सब मतों में बुरे हैं। यदि तुमको सत्य–मत को ग्रहण की इच्छा हो, तो वैदिक मत को ग्रहण करो। {सम्मुलास–14}

सब मनुष्यों को उचित है कि सबके मत–विषयक पुस्तकों को देख–समझकर कुछ सम्मति वा असम्मति देवें वा लिखें, नहीं तो सुना करें, क्योंकि जैसे पढ़ने से 'पण्डित' होता है, वैसे सुनने से 'बहुश्रुत' होता है। यदि श्रोता दूसरे को नहीं समझा सके, तथापि आप स्वयं तो समझ ही जाता है। जो कोई पक्षपातरूप यानारूढ़ होके देखते हैं, उनको न अपने और न पराए गुण–दोष विदित हो सकते हैं।

परन्तु बहुत मनुष्य ऐसे हैं कि जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते, किन्तु दूसरों के दोष देखने में अति–उद्युक्त रहते हैं। यह न्याय की बात नहीं है; क्योंकि प्रथम अपने दोष देख, निकालके, पश्चात् दूसरे के दोषों में दृष्टि देके निकालें। {सम्मुलास–12}

क्योंकि उस समय (महाभारत से पहले) सर्व–भूगोल में वेदोक्त एक मत था, उसी में सबकी निष्ठा थी और एक–दूसरे का सुख–दुःख, हानि–लाभ आपस में अपने समान समझते थे, तभी भूगोल में सुख था। अब तो बहुत मत–वाले होने से बहुत–सा दुःख और विरोध बढ़ गया है। इसका निवारण करना बुद्धिमानों का काम है। परमात्मा सबके मन में सत्य–मत का ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्या–मत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हों। इसमें सब विद्वान् लोग विचार कर, विरोध छोड़के अविरुद्ध–मत के स्वीकार से सब जन मिलकर सबके आनन्द को बढ़ावें। {सम्मुलास–11}

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः।।
इतरथान्धपरम्परा।।

– सांख्यसूत्र 3.79, 81

जब उत्तम–उत्तम उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्ध–परम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष होकर सत्योपदेश होता है, तभी अन्ध–परम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है। {सम्मुलास–11}

पुरुषा बहवो राजन् सततं
प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च
दुर्लभः।।

– महाभारत, उद्योगपर्व, विदुरनीति 37.14

विदुर जी कहते हैं –'हे धृतराष्ट्र ! इस संसार में दूसरे को निरन्तर प्रसन्न करने के लिए प्रिय बोलनेवाले खुशामदी लोग बहुत हैं परन्तु सुनने में अप्रिय विदित हो और वह कल्याण करनेवाला वचन हो, उसको कहने और सुननेवाला पुरुष दुर्लभ है।'

क्योंकि सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना, परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना। और दुष्टों की यही रीति है कि सम्मुख में गुण कहना और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना। जब तक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं सुनता वा कहनेवाला नहीं कहता तब तक मनुष्य दोषों से छूटकर, गुणी नहीं होता।

कभी किसी की निन्दा न करे। जैसे–**'गुणेषु दोषारोपणमसूया' और 'दोषेषु गुणारोपणमप्यसूया', 'गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः'** अर्थात् जो गुणों में दोष और दोषों में गुण लगाना वह 'निन्दा', और गुणों में गुण, दोषों में दोषों का कथन करना 'स्तुति' कहाती है अर्थात् मिथ्या–भाषण का नाम 'निन्दा' और सत्य भाषण का नाम 'स्तुति' है।'

जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करनेवाले की होती है, वैसी अन्य किसी की नहीं। इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करें, उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिए, अर्थात् जैसे किसी ने किसी से कहा कि–'मैं तुमसे वा तुम मुझसे अमुक समय में मिलूँगा, वा मिलना अथवा मैं अमुक वस्तु अमुक समय में तुमको दूँगा', उसको वैसे ही पूरी करे, नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी न करेगा। इसलिए सबको सदा सत्य– प्रतिज्ञायुक्त होना चाहिए।

'सत्यार्थ प्रकाशक' से साभार
ए–501, नीलकण्ठ हाईट्स सेवासी
कैनाल रोड सेकासी, वडोदरा
गुजरात–391101
मो. 9879528247

पत्र/कविता

टाना भगत

झारखंड में मौजूदा गुमला जिले के बिशुनपुर थाना स्थित चिंगरी नवाटोली गाँव में वर्ष 1888 में जतरा उराँव का जन्म हुआ था, जो बाद मे जतरा भगत या टाना भगत के नाम से चर्चित हुए। उनके पिता का नाम कोदल उराँव और माँ का नाम लिबरी था। शुरुआत में जतरा उराँव ने आदिवासी समाज में पशुबलि, मांसाहार, जीव हत्या, शराब पीने जैसी बुरी आदतों और अंधविश्वासों के खिलाफ अभियान चलाया। लेकिन धीरे–धीरे उनका वह आंदोलन जमींदारों और ब्रिटिशों की शोषक नीतियों के खिलाफ मुखर होने लगा। कहा जाता है कि उनकी नैतिक शिक्षाओं से चिढ़कर स्थानीय जमींदार और अंग्रेज़ उन्हें ताना देने लगे थे, जिससे उनका नाम ही टाना भगत पड़ गया।

वर्ष 1912–14 में उन्होंने ब्रिटिश राज और ज़मींदारों के खिलाफ अहिंसक असहयोग आंदोलन छेड़ा और लगान, सरकारी टैक्स आदि भरने तथा कुली के रूप में मजदूरी करने से मना कर दिया। वह आंदोलन दरअसल वर्ष 1900 में बिरसा मुंडा के नेतृत्व में हुए उलगुलान से प्रेरित था तथा औपनिवेशिकता और सामंतवाद–विरोधी धार्मिक सुधारवादी आंदोलन था। वर्ष 1916 में अंग्रेज़ शासन ने अपने ख़िलाफ स्थानीय लोगों को भड़काने के आरोप में जतरा भगत को गिरफ्तार कर लिया। जेल में उन्हें इतनी यातनाएँ दी गईं कि वहाँ से निकलने के कुछ ही समय बाद उनकी मृत्यु हो गई। उसके बाद टाना भगत आंदोलन खत्म होने के बजाए और तेज़ हो गया। ब्रिटिशों से लड़ाई में अहिंसा इन आंदोलनकारियों का हथियार थी। उसी दौरान इससे जुड़े कुछ आंदोलनकारियों की राँची में महात्मा गांधी से मुलाकात हुई। गांधी पर इन आंदोलनकारियों की अहिंसक लड़ाई का असर पड़ा, वहीं ये लोग भी गांधी से बेहद प्रभावित हुए। खादी कपड़ा और गांधी टोपी इन आंदोलनकारियों का पहनावा बन गई। आदिवासी लेखकों का तो यहाँ तक दावा है कि अहिंसक सत्याग्रह की व्यावहारिक समझ गांधी ने झारखंड के टाना भगत आंदोलन से ही प्राप्त की थी।

टाना भगत आंदोलनकारियों का बड़ा हिस्सा गांधी के सत्याग्रह से जुड़कर स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हुआ था। तब कांग्रेस के कई सम्मेलनों में बड़ी संख्या में टाना भगत आंदोलन से जुड़े लोग शामिल हुए थे।

आज भी टाना भगत के अनुयायी आदिवासियों की दिनचर्या राष्ट्रीय ध्वज के नमन से होती है, जिसे वे भगवान का दर्जा देते हैं। उनके हाथों में घंटी और झोले में शंख होता है। घंटी और शंख अंग्रेज़ी शासन के खिलाफ आज़ादी के लिए शुरु किए गए शंखनाद का प्रतीक माना जाता है। ज़मीन का लगान देने से इनकार करने के कारण इस समुदाय के अनेक लोगों की जमीनें अंग्रेज़ों ने नीलाम कर दी थीं। आज़ादी के बाद उन्हें उनकी ज़मीन वापस दिलाने का कानून पारित किया गया, इसके बावज़ूद विभिन्न वजहों से उनमें से बहुतों को अपनी जमीन वापस नहीं मिली। विडंबना यह भी है कि टाना भगत और उनके गाँव के बारे में भी व्यापक चर्चा बीती सदी के आठवें दशक में शुरु हुई। ऐसे में, चिंगरी नवाटोली गाँव एक तीर्थस्थल का स्वरूप तो ले चुका है।

स्वामी गुरुकुलानन्द 'कच्चाहारी'
पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)

जीवन में पकड़ो सदा उसी नाथ का हाथ

सुख दुख में जो साथ हो, दोस्त वह कहलाय।
दुख दूर कर सुख देता, ईश मित्र बन जाय।।
आते जाते लोग तो, थोड़ा ही चल पाय।
पर ईश्वर तो सदा, सबका साथ निभाय।
वह तो मरने तक सदा रहता सबके साथ।
जीवन में पकड़ो सदा, उसी नाथ का हाथ।।
समस्या एक जहाज सी, बहुत बड़ी लग जाय।
ईश कृपा सागर सी, उसको पार लगाय।।
अपने जिसके पास हों, झगड़ वही तो पाय।
जिसका अपना हो नहीं, तरस वही तो जाय।।
दोषी केवल वह नहीं, जो भी करता पाप।
उसका उतना दोष है, सहता जो भी पाप ।
बिना लड़े सहता रहा, रहा अधर्म बढ़ाय।
पापी को तुम दण्ड दो, तभी धर्म बच पाय।।
चिन्ता अपने मान की, करे नहीं अपमान।
देता सबको मान जो, वह पाता सम्मान।।

नरेन्द्र आहूजा विवेक
602, जी.एच. 53 सै.–20
पंचकूला, हरियाणा

पिता और पिता

पिता है नींव का पत्थर भवन–आधार होता है।
पिता सागर, सुदृढ़ नौका, सुखद पतवार होता है।
पिता क्या है पिता बनकर ही बेटा जान पाता है,
पिता दीवार होता है, खुशी का द्वार होता है।
पिता छाता है वर्षा धूप में, हीटर है सर्दी में,
सदा सहता है पत्थर पेड़ वह फलदार होता है।
पिता है तो खिलौने हैं, सजग सपने सलौने हैं,
पिता हर भार सह कर भी सदा आभार होता है।
कवच, कुंडल लुटाकर भी जो अपने प्राण दे देता,
ज़माने में उपेक्षा का वो क्यों हकदार होता है?
पिता हिम्मत की हिम्मत है, वही साहस का साहस है,
पिता पूरी गृहस्थी का सजग सरदार होता है।
सदा खोदे कुआँ ताज़ा, है माँ रानी पिता राजा,
कभी बासी नहीं होता, नया अख़बार होता है।
पिता चट्टान की छाती, है दीवाली दिया बाती,
सभी संकट जला देता है वो अंगार होता है।
पिता तिल–तिल जला करता, नहीं रुकता चला करता,
अमावस्या में वह पूनम सदा उजियार होता है।
पिता पोषक, पिता पोषण, न होने दे कभी शोषण,
समूचे घर का रक्षक, ढाल, ऋत–तलवार होता है।
पिता है भूख को भोजन, पिता सम्यक समायोजन,
पिता के श्रम से ही संसार–सागर पार होता है।
चहकता जब भी वृद्धाश्रम, सिसकते सूर्य सिंहासन,
वो घर तब डूब जाता है, पिता जब भार होता है।
पिता सुख–स्रोत सावन है, सदा खुशियों का आँगन है,
भयंकर लू व गर्मी में सजल खजियार होता है।
बचाता है, नचाता है, रिझाता है, विधाता है,
पिता आँसू छिपाता है, सदा रसधार होता है।
पिता रक्षा, पिता रक्षक, पिता वसुदेव संरक्षक,
पिता–माता जहाँ खुश हैं, वहीं परिवार होता है।
पिता निस्स्वार्थ नंदीश्वर, पिता साक्षात हैं ईश्वर,
पिता साकार परमेश्वर सदा उपहार होता है।
'मनीषी है', मनीषा है, पिता ही ईश, ईशा है,
पिता भुवनेश, भुवनों का, कमल–संसार होता है।

प्रो. डॉ सारस्वत मोहन 'मनीषी'
डी–801, बैस्टेक पार्क व्यू संस्कृति एपार्टमेंट, सैक्टर –92,
नया गुरुग्राम हरियाणा–122505
मो. 9810835335

हंसराज पब्लिक स्कूल, पंचकूला में कार्यशाला

हंसराज पब्लिक स्कूल, सेक्टर 6, पंचकूला ने CBSE के COE पंचकूला के तत्वावधान में STEM DLD (डिसिप्लिन लिंक्ड डोजियर) कार्यशाला का सफल आयोजन किया। यह कार्यशाला राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 की सोच के अनुरूप STEM शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु शिक्षकों और विशेषज्ञों को एक मंच पर लाने का प्रयास थी।

इस कार्यशाला में विभिन्न विद्यालयों के शिक्षकों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। कई प्रतिभागियों ने STEM विषयों पर आधारित अपने शोध पत्र और केस स्टडीज प्रस्तुत कीं, जिनमें भौतिकी, रसायन विज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान और गणित जैसे विषयों को रचनात्मक शिक्षण विधियों, कक्षा रणनीतियों और अनुभवात्मक शिक्षण मॉडल के माध्यम से प्रस्तुत किया गया।

छह शिक्षकों ने अपने शोध पत्र प्रस्तुत किए, जिनमें वास्तविक जीवन की समस्याओं को हल करने, आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देने और खोज आधारित अधिगम को कक्षा में लागू करने की प्रतिबद्धता स्पष्ट रूप से दिखाई दी।

डॉ. रोहित शर्मा, सहायक प्रोफेसर, शूलिनी विश्वविद्यालय, सोलन ने प्रस्तुतकर्त्ताओं की सराहना करते हुए कहा, "यह देखकर अत्यंत प्रेरणा मिलती है कि विद्यालय स्तर पर इतनी उच्च गुणवत्ता वाला व्यावहारिक शोध कार्य सामने आ रहा है।"

श्रीमती जया भारद्वाज, प्राचार्या, हंसराज पब्लिक स्कूल एवं जिला प्रशिक्षण समन्वयक (DTC) ने पूरे सत्र में उपस्थिति दर्ज कराते हुए प्रतिभागियों का उत्साहवर्धन किया। उन्होंने कहा,"यह कार्यशाला वैज्ञानिक सोच को पोषित करने और शिक्षकों एवं विद्यार्थियों में 21वीं सदी के कौशल विकसित करने की दिशा में एक प्रयास है। हंसराज पब्लिक स्कूल में हम निरंतर व्यावसायिक विकास को शैक्षणिक उत्कृष्टता की आधारशिला मानते हैं।"

कार्यशाला का समापन प्रतिक्रिया सत्र और धन्यवाद ज्ञापन के साथ हुआ।

आर्यसमाज (अनारकली) के सत्संग में 150 की उपस्थिति

इस रविवार 27–7–25 को आर्यसमाज अनारकली में साप्ताहिक सत्संग का आयोजन हुआ जिसमें प्रातः 9 बजे वृहद्यज्ञ आर्यसमाज के धर्माचार्य पं. घनश्याम आर्य सिद्धान्ताचार्य के ब्रह्मत्व में हुआ।

इस रविवार शहीद राजपाल के संस्कृत एवं धर्मशिक्षक पं. ब्रह्मदेव वेदालंकार का "अवसाद से उल्लास की ओर" विषय पर सारगर्भित प्रवचन हुआ।

श्री पद्म सिंह आर्य का देशभक्ति पर कविता पाठ हुआ।

सत्संग में कार्यकारी प्रधान, श्री अजय सूरी, मन्त्री श्री अशोक कुमार

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, दयानन्द विहार दिल्ली की संगीताचार्या डॉ. भावना शर्मा के नेतृत्व में छात्र–छात्राओं ने बहुत ही सुन्दर प्रभुभक्ति के भजनों से सबको आह्लादित कर दिया स्कूल अदलखा के अतिरिक्त 150 आर्य सत्संग प्रेमियों ने भाग लिया। श्री देवेन्द्र कुमार शर्मा को उनके जन्मदिवस पर सम्मानित किया गया। शान्तिपाठ एवं प्रसाद वितरण के साथ सत्संग समाप्त हुआ।

डी.ए.वी. वेलचेरी, चेन्नई में अंतर्विद्यालयी सांस्कृतिक उत्सव

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, वेलचेरी, चेन्नई में अंतर्विद्यालयी सांस्कृतिक उत्सव, ***अवंत गार्ड एसेंस*** आयोजित किया गया। इस एक दिवसीय उत्सव में आधारित शानदार समूह नृत्य प्रदर्शन ने मंच पर धूम मचा दी। संगीत की एक अनोखी उपलब्धि मधुर गायकों और वाद्ययंत्रों के साथ कानों को सुकून देने वाली थी।

16 सी.बी.एस.ई. विद्यालयों के 465 छात्रों ने भाग लिया।

उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता मुख्य अतिथि प्रसिद्ध कर्नाटक संगीतज्ञ और पार्श्वगायक श्री साई विघ्नेश ने की। उन्होंने कहा कि "निरंतर प्रयास और दृढ़ विश्वास ही हमारे सपनों को हकीकत में बदल सकते हैं।" इस उत्सव में 12 प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। विभिन्न युगों की नृत्य शैलियों पर 'फुटसल', 'ट्रेलर एडिट', 'स्ट्रीट थिएटर', 'विज़डम वॉर्स', 'वॉयस ओवर–द लाइव डबिंग', वेंचर वोर्टेक्स और द वर्डिक्ट 'ब्लेड रनर 2049, 'आई. पी.एल. बिड वॉर' जैसी प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ।

समापन समारोह में संगीतकार डॉ. कलैमामणि श्री. धीना और फ़िल्म निर्माता एवं सी.बी.एफ.सी. के पैनल सदस्य डॉ. वी. के. वेंकटेशन उपस्थित थे।

आर्य समाज 150 मानव सेवा के स्वर्णिम वर्ष 1875 - 2025

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2025

उपसभा, पश्चिम बंगाल की प्रेरणा से सभी विद्यालयों में वनमहोत्सव का आयोजन

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, पश्चिम बंगाल के तत्त्वावधान में सभी विद्यालयों के आर्य युवा समाजों द्वारा अपने–अपने विद्यालय में अनेक गतिविधियों के साथ वनमहोत्सव पाँच दिनों तक मनाया गया।

डी.ए.वी. मॉडल स्कूल, दुर्गापुर में वनमहोत्सव के उद्देश्य को सफल बनाने के लिए अनेक गतिविधियों द्वारा लोगों को जागरुक किया। लोगों को जागरुक करने के लिए पोस्टर भी छात्रों द्वारा बनाए गए।

डी.ए.वी. मॉडल स्कूल, के. एस. टी. पी. आसनसोल में भी वनमहोत्सव पर कविता पाठ प्रतियोगिता के माध्यम से विद्यार्थियों ने वृक्ष के सृजन की प्रक्रिया को बताया। कल्याणपुर बस्ती के (बकुल) के पौधे लोहे के पिंजरे में लगाए गये।

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, कन्यापुर, आसनसोल में छात्रों एवं लोगों को वृक्ष भेंट स्वरुप दिए गए। छात्रों को प्रेरित करने के लिए पर्यावरण से सम्बंधित लघुनृत्यनाटिका का आयोजन भी किया गया। इसके पश्चात् वृक्षारोपण किया गया।

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, मिदनापुर में बृहत् रूप से वृक्षारोपण किया गया।

प्रक्षेत्र के प्रत्येक विद्यालय में आर्य युवा समाज के सदस्यों के द्वारा सैंकड़ों की सख्या में वृक्ष लगाये गए।

उपसभा–प्रधान पापिया मुखर्जी ने सभी विद्यालयों के प्राचार्यों, शिक्षक/शिक्षिकाओं एवं विद्यार्थियों को प्रकृति की रक्षा हेतु बृहत् रूप से वनमहोत्सव मनाने के लिए धन्यवाद दिया और कहा–श्वास लेने का एक मात्र उपाय है वृक्ष। यदि वृक्ष नहीं होंगे तो हम शुद्ध वायु से श्वास नहीं ले सकते। शांतिपाठ के साथ वनमहोत्सव कार्यक्रम का समापन हुआ।

एच.एम.वी. में यज्ञ के साथ आरम्भ हुआ नवसत्र

हंसराज महिला महाविद्यालय, जालंधर में नव सत्र पर यज्ञ सम्पन्न किया गया। इस अवसर पर लोकल एडवाइज़री कमेटी के चेयरमैन जस्टिस (रिटा.) श्री एन.के. सूद मुख्य मेहमान के रूप में उपस्थित रहे। विशेषातिथि के रूप में लोकल एडवाइज़री कमेटी के सदस्य श्री सुरेन्द्र सेठ, डॉ. सुषमा चावला तथा श्री एस.पी. सहदेव जी ने इस शुभ अवसर पर अपनी सहभागिता की।

प्राचार्या प्रो. डॉ. (श्रीमती) अजय सरीन ने आए हुए सभी महानुभावों का अभिनन्दन किया। प्राचार्या ने कहा कि हमारी संस्था विकास पथ पर अग्रसर होते हुए नव कीर्तिमान स्थापित कर रही है। आज प्रत्येक अध्यापक और प्रत्येक विद्यार्थी का यह कर्त्तव्य है कि वह स्वयं को अपडेट रखें ताकि हम आज के युग में पूरे गर्व के साथ कदम से कदम मिलाकर चल सके।

सुरेन्द्र सेठ जी ने सभा को सम्बोधित करते हुए छात्राओं को आशीर्वाद दिया और कहा कि जीवन में अपना लक्ष्य निर्धारित करें और उसे पूरा करने में पूरी तन्मयता से लग जायें।

डॉ. ममता ने सभी का धन्यवाद ज्ञापित किया।

शांति पाठ से यज्ञ सम्पन्न हुआ।

बी.बी.के. डी.ए.वी. महिला कॉलेज अमृतसर में नव शैक्षणिक सत्र पर यज्ञ

बी.बी.के. डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन अमृतसर के प्रागंण में नव शैक्षणिक सत्र 2025–26 के शुभारम्भ के अवसर पर विशेष हवन–यज्ञ का आयोजन किया गया। इस अवसर पर मुख्य यजमान के रूप में श्री सुदर्शन कपूर, अध्यक्ष स्थानीय सलाहकार समिति उपस्थित रहे।

प्राचार्या डॉ. पुष्पिन्दर वालिया ने अपने सम्बोधन में छात्राओं को जीवन में वैदिक और आध्यात्मिक मूल्यों को अपनाने तथा प्रत्येक क्षण प्रभु द्वारा मिले सुन्दर जीवन एवं उपहारों के लिए धन्यवाद करने को कहा। उन्होंने संस्थान की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला।

श्री इंदरपाल आर्य (प्रधान आर्य समाज, लक्ष्मणसर) ने प्राचार्या को कॉलेज की उपलब्धियों पर बधाई देते हुए कहा कि केवल डी.ए.वी शिक्षण संस्थाओं में ही छात्राओं को शिक्षा के साथ–साथ संस्कार भी दिए जाते हैं। श्री आर्य ने यज्ञ के महत्व से अवगत कराया तथा इसे अपने दैनिक जीवन में अपनाने के लिए प्रेरित किया।

श्री सुदर्शन कपूर जी ने उपस्थित लोगों का धन्यवाद ज्ञापित किया एवं छात्राओं को अपना आशीर्वाद प्रदान किया। श्री विजय महक ने 'मुझे तुमने दाता' भजन का गायन कर सभी को मंत्र मुग्ध कर दिया।

शान्ति पाठ और प्रसाद वितरण से कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**